

श्रम • संस्कृति • स्वाभिमान • संघर्ष

धागों में बुना स्वाभिमान

ब्रिटिश शासन के खिलाफ
भारतीय बुनकरों का संघर्ष

इतिहास

शोषण

संघर्ष

स्वदेशी चेतना

स्वतंत्रता में योगदान

वर्तमान और भविष्य

प्रत्यक्ष
क्षेत्र अध्ययन
राजस्थान, मध्यप्रदेश
और गुजरात के
सैकड़ों गाँवों से

लेखक

नाथु सोसा

शोधकर्ता एवं सामाजिकचिंतक

धागों में बुना स्वाभिमान

ब्रिटिश शासन के खिलाफ
भारतीय बुनकरों का संघर्ष

(एक शोधपरक, ऐतिहासिक एवं दस्तावेज़ी अध्ययन)

लेखक

नाथु सोसा

लेखक • शोधकर्ता • सामाजिकचिंतक

Dhago Mein Buna Swabhiman

Woven in Threads of Dignity

The Struggle of Indian Weavers Against British Rule

लेखक	:	नाथु सोसा
		लेखक • शोधकर्ता • सामाजिकचिंतक
मोबाइल	:	+91-98251-46448
वेबसाइट	:	www.nathusosa.com
ई-मेल	:	nathusosa@gmail.com
यूट्यूब	:	@nathusosa9781
फेसबुक	:	facebook.com/nathu.sosa.9
ट्विटर (एक्स)	:	@nathusosa
इंस्टाग्राम	:	nathu.sosa.9
प्रथम संस्करण	:	२०२६
भाषा	:	हिन्दी
ISBN	:	978-93-91991-07-4
मूल्य	:	₹ २५०/-
प्रकाशक	:	सूर्यजित पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड अहमदाबाद - ३८००५८
प्राप्ति स्थान	:	श्रीमती नीरू नाथु सोसा १, रघुनंदन, चित्रकूट बंगलोज, सी. के. पार्क के पास, हनी पार्क रोड, अडाजन, सूरत - ३९५००९
मुद्रण संस्कार	:	मुद्रेश पुरोहित, सूर्या ऑफसेट आंबली बोपल रोड, अहमदाबाद - ३८००५८, ई-मेल : mail@suryaoffset.com

सुरक्षित अस्वीकरण :

- इस किताब के किसी भी हिस्से को बिना लिखी हुई इजाजत के किसी भी इलेक्ट्रॉनिक या मैकेनिकल तरीके से दोबारा बनाना, कॉपी करना, स्टोर करना, ट्रांसलेट करना या भेजना जुर्म है।
- इस किताब में बताए गए विचारों, राय और नतीजों के लिए सिर्फ लेखक ही जिम्मेदार हैं। पब्लिशर या प्रिंटर इसके लिए जिम्मेदार नहीं होगा।

समर्पण

उन सभी ज्ञात-अज्ञात बुनकरों, कारीगरों और श्रमशील परिवारों को समर्पित,
जिन्होंने अपने हाथों से केवल वस्त्र नहीं बुने,
बल्कि भारत की संस्कृति, स्वाभिमान और सभ्यता को भी जीवित रखा ।
जय भीम । जय भारत ।



लेखक का निवेदन

धागों में बुना स्वाभिमान-ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीय बुनकरों का संघर्ष

किसी भी राष्ट्र का इतिहास केवल उसके राजाओं, साम्राज्यों, युद्धों और राजनीतिक घटनाओं का इतिहास नहीं होता। राष्ट्र की वास्तविक गाथा उन साधारण लोगों के जीवन में बसती है, जिनके श्रम, त्याग, संघर्ष और सृजन ने उसकी सभ्यता को आकार दिया होता है। यदि भारत की आत्मा को समझना हो, तो हमें उन हाथों को समझना होगा जिन्होंने खेतों में अन्न उगाया, मिट्टी को कला में बदला और करघों पर बैठकर संस्कृति को धागों में पिरोया।

प्रस्तुत ग्रंथ “धागों में बुना स्वाभिमान ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीय बुनकरों का संघर्ष” मेरे लिए केवल एक पुस्तक नहीं है; यह वर्षों के अध्ययन, शोध, यात्राओं, संवादों और आत्ममंथन की परिणति है। यह उन लाखों ज्ञात-अज्ञात बुनकरों, कारीगरों और श्रमशील परिवारों के प्रति मेरी कृतज्ञ श्रद्धांजलि है, जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी कला, अपनी संस्कृति और अपने स्वाभिमान को जीवित रखा। इतिहास के अध्ययन के दौरान मुझे बार-बार यह प्रश्न विचलित करता रहा कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और आर्थिक इतिहास में बुनकर समाज के योगदान को वह सम्मान क्यों नहीं मिला, जिसके वे वास्तविक अधिकारी थे। इतिहास के विशाल ग्रंथों में राजाओं और साम्राज्यों की गाथाएँ विस्तार से मिलती हैं, किन्तु उन करघों की ध्वनि बहुत कम सुनाई देती है, जिनकी बदौलत भारत कभी विश्व के सबसे समृद्ध वस्त्र उत्पादक देशों में गिना जाता था।

जब मैंने इस विषय का गंभीर अध्ययन प्रारम्भ किया, तब मेरे सामने एक ऐसा इतिहास खुला जो केवल आर्थिक शोषण का इतिहास नहीं था। यह आत्मसम्मान का इतिहास था। यह सांस्कृतिक अस्तित्व की रक्षा का इतिहास था। यह मौन



प्रतिरोध का इतिहास था। यह उन लोगों की कथा थी जिन्होंने तलवार नहीं उठाई, परंतु अपने श्रम और स्वदेशी चेतना से विदेशी शासन को चुनौती दी। इस पुस्तक की यात्रा मुझे भारत के अनेक प्रदेशों तक ले गई। राजस्थान के सोजत, बिलावास, रेनवाल, ईशपुरा, अलूदा और जाबरोल जैसे गाँवों में मैंने इतिहास को केवल पढ़ा नहीं, बल्कि उसे जीया। अलूदा में चौथमलजी की स्मृतियाँ, राष्ट्रध्वज के लिए बुनी गई खादी का गौरव, बिलावास के करघों पर जीवित सात पीढ़ियों की परंपरा और जाबरोल के बुनकरों का वर्तमान संघर्ष—इन सबने मुझे यह सिखाया कि इतिहास कभी समाप्त नहीं होता; वह केवल पीढ़ियों के माध्यम से अपना स्वरूप बदलता है।

इसी प्रकार गुजरात के भावनगर, तळजा, महुवा, जूना सांगाणा, मांडवा, पनियाली, बगदाणा, सेदरडा और अनेक गाँवों की यात्राओं ने मुझे अपने ही अतीत से पुनः मिलवाया। मैं स्वयं ऐसे परिवेश में पला-बढ़ा हूँ जहाँ करघों की ध्वनि, ऊन कातती महिलाएँ, कम्बल की फेरी और श्रम-सम्मान का वातावरण जीवन का स्वाभाविक हिस्सा था। अपने बड़े पापा को गाँव-गाँव कम्बल की फेरी करते देखना और बाद में उसी परंपरा का शोधार्थी की दृष्टि से अध्ययन करना मेरे जीवन की सबसे महत्वपूर्ण अनुभूतियों में से एक है।

गुजरात के अध्ययन के दौरान मेरी यात्राएँ केवल भावनगर, तळजा और महुवा क्षेत्र तक सीमित नहीं रहीं। बुनकर समाज की परंपराओं को निकट से समझने के लिए मुझे सौराष्ट्र, उत्तर गुजरात और कच्छ क्षेत्र के अनेक जिलों तथा गाँवों में जाने का अवसर मिला। विशेष रूप से सुरेन्द्रनगर, जामनगर, पोरबंदर, जूनागढ़, कच्छ और महेसाणा जिलों के अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में मैंने बुनकर परिवारों के बीच समय बिताया तथा उनकी जीवनशैली, उत्पादन प्रक्रिया, लोकज्ञान और सांस्कृतिक परंपराओं का गहन अध्ययन किया।

सुरेन्द्रनगर और सौराष्ट्र क्षेत्र में खादी, ऊनी वस्त्रों तथा पारंपरिक हस्तकरघा उद्योग की समृद्ध परंपरा देखने को मिली, वहीं जामनगर और पोरबंदर के गाँवों में श्रम, अनुशासन और पारिवारिक सहभागिता पर आधारित बुनाई संस्कृति आज भी

जीवित दिखाई दी। जूनागढ़ और गिर क्षेत्र में अनेक बुनकर परिवारों ने बदलते समय की चुनौतियों के बावजूद अपनी पारंपरिक कला और पहचान को संरक्षित रखा है। कच्छ की यात्रा मेरे लिए विशेष रूप से प्रेरणादायी रही। भुज, अंजार, मांडवी, भचारु तथा अन्य क्षेत्रों में विकसित कच्छी बुनाई, शॉल निर्माण, ऊनी वस्त्र, पारंपरिक डिजाइन और रंगों की अद्भुत दुनिया ने मुझे गहराई से प्रभावित किया। कच्छ के कारीगरों ने अपनी लोककला और हस्तकौशल के माध्यम से न केवल गुजरात बल्कि भारत को भी वैश्विक पहचान दिलाई है। उनकी बुनावटों में केवल धागे नहीं, बल्कि रेगिस्तान की संस्कृति, लोकजीवन और पीढ़ियों का अनुभव बुना हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार महेसाणा जिले और उत्तर गुजरात के अनेक क्षेत्रों में खादी, सूती वस्त्र तथा पारंपरिक ग्रामीण बुनाई की विशिष्ट परंपरा देखने को मिली। यहाँ के बुनकरों ने सीमित संसाधनों के बावजूद अपनी कला को जीवित रखा है। अनेक परिवार आज भी पीढ़ियों से प्राप्त कौशल को संरक्षित करते हुए नई पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य कर रहे हैं। उनकी साधना, श्रमशीलता और कला के प्रति समर्पण ने मुझे अत्यंत प्रभावित किया।

इन यात्राओं के दौरान मुझे बार-बार यह अनुभव हुआ कि गुजरात की बुनाई परंपरा किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। कच्छ के रंगों से लेकर सौराष्ट्र के कर्धों तक और उत्तर गुजरात की खादी परंपरा से लेकर दक्षिण गुजरात की लोकसंस्कृति तक, प्रत्येक क्षेत्र ने अपनी विशिष्ट पहचान विकसित की है। यही विविधता गुजरात को भारत की समृद्ध बुनाई परंपराओं का एक जीवंत केंद्र बनाती है। इन यात्राओं के दौरान मुझे यह अनुभव हुआ कि गुजरात की बुनाई परंपरा केवल किसी एक क्षेत्र या समुदाय तक सीमित नहीं है। प्रत्येक जिले, प्रत्येक गाँव और प्रत्येक परिवार ने अपनी विशिष्ट शैली, तकनीक और कलात्मक पहचान विकसित की है। कहीं ऊनी कम्बल की परंपरा जीवित थी, कहीं खादी और टॉवेल निर्माण की कला, कहीं रंग-बिरंगी पछेड़ियाँ और साफल, तो कहीं लोकजीवन से जुड़ी ऐसी बुनावटें दिखाई दीं जो केवल वस्त्र नहीं, बल्कि स्थानीय संस्कृति की जीवित अभिव्यक्ति थीं। सुरेन्द्रनगर जिले के गाँवों में मैंने अनेक कारीगरों को देखा जो सीमित संसाधनों के बावजूद



अपने पूर्वजों की विरासत को जीवित रखने का प्रयास कर रहे थे। जामनगर क्षेत्र में पारंपरिक बुनाई की विविधता और रंगों का सौंदर्य मन को प्रभावित करने वाला था। पोरबंदर और जूनागढ़ जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में मुझे ऐसे परिवारों से मिलने का अवसर मिला जिनके घरों में आज भी करघे केवल उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि परिवार की पहचान और गौरव का प्रतीक माने जाते हैं। इन यात्राओं के दौरान जब मैं किसी बुनकर के घर में प्रवेश करता, करघे की टक-टक सुनता, धागों के बीच बैठकर उनके अनुभव सुनता और उनके हाथों से तैयार वस्त्रों को देखता, तब मेरे भीतर एक अद्भुत गर्व की अनुभूति होती थी। मुझे बार-बार यह अनुभव होता था कि मैं केवल कारीगरों से नहीं मिल रहा हूँ; मैं भारत की जीवित सांस्कृतिक विरासत से संवाद कर रहा हूँ।

इन बुनकर परिवारों की सादगी, श्रम के प्रति उनकी निष्ठा, कला के प्रति समर्पण और विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी परंपरा को जीवित रखने का उनका संकल्प मेरे लिए अत्यंत प्रेरणादायी रहा। उनकी बुनावटों में केवल धागे नहीं थे; उनमें पीढ़ियों का अनुभव, संघर्ष, लोकस्मृतियाँ और सांस्कृतिक चेतना भी बुनी हुई थी। यही कारण है कि इस पुस्तक का लेखन मेरे लिए केवल एक शोधकार्य नहीं रहा। यह उन लोगों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का प्रयास भी है, जिनकी कला और श्रम ने भारत की सांस्कृतिक पहचान को समृद्ध बनाया। गुजरात के गाँवों में बिखरी हुई यह बुनाई परंपरा मुझे बार-बार यह विश्वास दिलाती रही कि जब तक करघों की ध्वनि जीवित है, तब तक भारत की लोकसंस्कृति, श्रम-संस्कृति और आत्मनिर्भरता की चेतना भी जीवित रहेगी।

इस ग्रंथ के लेखन और प्रकाशन की यात्रा केवल मेरी व्यक्तिगत साधना नहीं रही, बल्कि अनेक विद्वानों, मित्रों, सहयोगियों और परिजनों के स्नेह, मार्गदर्शन एवं सहयोग से पूर्ण हुई है। इस अवसर पर मैं उन सभी व्यक्तियों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना अपना नैतिक दायित्व समझता हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से इस कार्य को संभव बनाने में योगदान दिया।

मैं विशेष रूप से शामिलदास कॉलेज, भावनगर के प्राध्यापक आदरणीय प्रोफेसर लक्ष्मणभाई वाधेर का आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके विद्वत्तापूर्ण मार्गदर्शन और प्रेरणा ने मेरे अध्ययन को नई दिशा प्रदान की। इसी प्रकार पाली (जोधपुर) के प्राध्यापक एवं मेरे आत्मीय मित्र श्री देवाराम मेघवाल के सहयोग, विचार-विमर्श और प्रोत्साहन ने भी इस शोधयात्रा को समृद्ध बनाया।

मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती नीरु सोसा के प्रति विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस दीर्घ अध्ययन और लेखन प्रक्रिया के दौरान निरंतर सहयोग, धैर्य और प्रेरणा प्रदान की। मेरे पुत्र श्री जिगर सोसा ने भी प्रत्येक चरण में मेरा उत्साहवर्धन किया और अनेक व्यावहारिक कार्यों में महत्वपूर्ण सहयोग दिया।

इस ग्रंथ की एक विशेष उपलब्धि यह भी है कि मेरे पूर्व प्रकाशित गुजराती ग्रंथ “ब्रिटिश शासन के खिलाफ बुनकरो का संघर्ष” को हिंदी पाठकों तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य सुश्री सरिता पी. मीणा द्वारा किया गया। उन्होंने अत्यंत परिश्रम, निष्ठा और संवेदनशीलता के साथ इस ग्रंथ का हिंदी रूपांतरण किया, जिसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

मैं अपने प्रिय मित्र श्री प्रेमसिंह मीणा का भी विशेष धन्यवाद करता हूँ, जो राजस्थान और मध्यप्रदेश की मेरी क्षेत्रीय अध्ययन यात्राओं में मेरे साथ रहे। अनेक बुनकर परिवारों तक पहुँचने, स्थानीय समाज से संवाद स्थापित करने तथा क्षेत्रीय अध्ययन को सफल बनाने में उनका सहयोग अत्यंत महत्वपूर्ण रहा।

इसके अतिरिक्त मैं उन सभी बुनकर परिवारों, कारीगरों, ग्रामीण समुदायों, मित्रों, शुभचिंतकों और सहयोगियों का भी हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके अनुभव, संवाद, सुझाव और सहयोग ने इस ग्रंथ को पूर्णता प्रदान की। यद्यपि सभी के नाम यहाँ लिख पाना संभव नहीं है, तथापि इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ में उनके योगदान की छाप विद्यमान है।



मेरे लिए यह ग्रंथ केवल एक पुस्तक नहीं है; यह भारतीय बुनकर समाज के संघर्ष, स्वाभिमान, श्रम और सांस्कृतिक चेतना को समर्पित एक विनम्र श्रद्धांजलि है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह कृति न केवल बुनकर समाज के गौरवशाली इतिहास को नई पीढ़ी तक पहुँचाएगी, बल्कि भारत की श्रम-संस्कृति और सांस्कृतिक विरासत के प्रति सम्मान का भाव भी जागृत करेगी।

मैं इसे अपने लिए सौभाग्य और देश के लिए गौरव का विषय मानता हूँ कि मुझे भारत के उन श्रमशील हाथों की गाथा लिखने का अवसर प्राप्त हुआ, जिन्होंने अपने करघों पर केवल वस्त्र नहीं, बल्कि भारत की सभ्यता, संस्कृति, स्वाभिमान और स्वतंत्रता चेतना को भी बुना है।

जब तक भारत के किसी गाँव में करघों की टक-टक सुनाई देती रहेगी, तब तक भारत की आत्मा भी स्पंदित होती रहेगी।

जय भीम । जय भारत ।

नाथु सोसा

लेखक, शोधकर्ता एवं सामाजिकचिंतक

इस पुस्तक में व्यक्त विचार लेखक के स्वतंत्र अध्ययन, शोध, क्षेत्रीय भ्रमण, उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों, अभिलेखों तथा बुनकर समाज से प्राप्त अनुभवों पर आधारित हैं। पुस्तक का उद्देश्य भारतीय बुनकर समाज के इतिहास, संघर्ष और योगदान को रेखांकित करना है।

प्रस्तावना

जब मैंने “ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीय बुनकरों का संघर्ष” पुस्तक का अध्ययन किया, तब मुझे यह गहराई से अनुभव हुआ कि भारत की सभ्यता, संस्कृति और आर्थिक समृद्धि में बुनकर समाज का योगदान कितना महान और ऐतिहासिक रहा है। भारत केवल कृषि प्रधान देश ही नहीं था, बल्कि यह विश्वविख्यात वस्त्र निर्माण और हस्तकरघा कला का केंद्र भी रहा है। हाथ से कपड़ा बनाने की जो अद्भुत कला भारतीय बुनकरों के पास थी, वैसी कौशलपूर्ण बुनावट संसार के बहुत कम देशों में देखने को मिलती थी। भारतीय बुनकरों द्वारा निर्मित मलमल, रेशम, खादी, जरीदार वस्त्र और हस्तनिर्मित कपड़े विदेशों तक प्रसिद्ध थे। भारत के करघों से निकले वस्त्र केवल व्यापार का साधन नहीं थे, बल्कि वे भारत की सांस्कृतिक गरिमा और श्रम-संस्कृति के प्रतीक थे।

नाथू सर की मूल गुजराती पुस्तक का हिंदी अनुवाद करते समय मैंने केवल शब्दों का रूपांतरण नहीं किया, बल्कि उन पीड़ाओं, संघर्षों और बलिदानों को महसूस किया, जिन्हें भारतीय बुनकर समाज ने सदियों तक सहा। इस पुस्तक को पढ़ते हुए बार-बार मन में यह प्रश्न उठता रहा कि जिन बुनकरों ने अपने श्रम से भारत को विश्व में पहचान दिलाई, इतिहास में उनके संघर्षों और बलिदानों को वह स्थान क्यों नहीं मिला जिसके वे वास्तविक अधिकारी थे। ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय बुनकरों पर असंख्य अत्याचार किए गए। अंग्रेजों ने केवल उनके उद्योग को नष्ट करने का प्रयास नहीं किया, बल्कि उनके आत्मसम्मान और अस्तित्व को भी कुचलने का प्रयास किया। अन्यायपूर्ण कर, जबरन अनुबंध, कम मजदूरी, आर्थिक शोषण और सामाजिक अपमान के माध्यम से भारतीय बुनकरों को कमजोर बनाया गया। कई स्थानों पर उन्हें अपराधी तक घोषित किया गया।

यह केवल आर्थिक शोषण की कहानी नहीं थी; यह उस समाज की वेदना थी जिसने अपने हाथों से भारत की सभ्यता को बुना था। भारतीय बुनकरों को विदेशी सत्ता से ही नहीं, बल्कि सामाजिक भेदभाव और उपेक्षा से भी संघर्ष करना पड़ा। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भी बुनकर समाज की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। चरखा, खादी और स्वदेशी आंदोलन केवल प्रतीक नहीं थे, बल्कि वे आत्मनिर्भर भारत और श्रम-सम्मान की विचारधारा के जीवंत स्वर थे। भारतीय बुनकरों ने अपने श्रम और संघर्ष से स्वतंत्रता चेतना को मजबूत किया। भारत के महान समाज सुधारक और संविधान निर्माता डॉ. भीमराव



आंबेडकर ने भी श्रमिकों, कारीगरों और वंचित समाजों के संघर्ष को ऐतिहासिक महत्व दिया। उन्होंने सदैव श्रम, समानता और आत्मसम्मान को समाज निर्माण का आधार माना। यह पुस्तक भी उसी श्रम-संस्कृति और संघर्षशील चेतना को सामने लाने का एक विनम्र प्रयास है।

भारतीय बुनकरों के पास महीन धागों को बुनकर अद्भुत और मुलायम वस्त्र तैयार करने की अनुपम कला थी। यह केवल हुनर नहीं, बल्कि पीढ़ियों की साधना थी। भारत की गौरवशाली हस्तकला और बुनाई परंपरा ने विश्वभर में भारतीय संस्कृति को विशिष्ट पहचान दिलाई। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम इस अमूल्य धरोहर को पुनर्जीवित करें और आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाएँ। हमारे बुनकर केवल श्रमिक नहीं हैं; वे भारत के इतिहास, लोकसंस्कृति और आत्मसम्मान के जीवंत प्रतीक हैं। उनके संघर्षों को जानना और उन्हें इतिहास में उचित स्थान देना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।

गुजराती से हिंदी अनुवाद के क्षेत्र में यह मेरा प्रथम प्रयास है। संभव है कि कहीं भाव या अर्थ की अभिव्यक्ति में त्रुटि रह गई हो, फिर भी मैंने पूरी संवेदनशीलता और निष्ठा के साथ इस कृति को हिंदी पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है। मैं हृदय से आदरणीय नाथू सर की आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस महत्वपूर्ण पुस्तक का हिंदी अनुवाद करने की अनुमति प्रदान की। मैं अपनी प्रिय नीरू बहन सोसा का भी विशेष आभार व्यक्त करती हूँ, जिनका स्नेह और सहयोग इस कार्य में निरंतर प्राप्त हुआ। साथ ही मेरी भतीजियाँ साक्षी मेरे दोनों पुत्र मिहिर टाटू और रोहित टाटू, तथा मेरे पति प्रेमसिंह मीना का सहयोग और प्रोत्साहन इस कार्य की सबसे बड़ी शक्ति रहा। परिवार के सहयोग, विश्वास और प्रेरणा के बिना यह कार्य संभव नहीं था।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि “ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीय बुनकरों का संघर्ष” हिंदी भाषी पाठकों तक पहुँचे और भारतीय बुनकर समाज के संघर्ष, श्रम और गौरव को समझने का एक माध्यम बने।

सरिता पी मीना

संरपच सरिता मीना (ग्राम मीना बड़ौदा)

C-९८ A, कुसुम विहार, गली नं. ३ जगतपुरा, जयपुर (राजस्थान)

मो. ९८२५४९८२१०

प्रकाशक की ओर से

हमें यह महत्वपूर्ण एवं शोधपरक ग्रंथ “ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीय बुनकरों का संघर्ष” पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अत्यंत प्रसन्नता और गौरव का अनुभव हो रहा है। भारतीय इतिहास के अनेक महत्वपूर्ण अध्यायों में बुनकर समाज का योगदान अत्यंत उल्लेखनीय रहा है, किन्तु दुर्भाग्यवश उनके संघर्ष, त्याग, श्रम और राष्ट्रनिर्माण में उनकी भूमिका पर अपेक्षित रूप से कम कार्य हुआ है। प्रस्तुत ग्रंथ इसी ऐतिहासिक रिक्तता को भरने का एक गंभीर और सार्थक प्रयास है।

लेखक श्री नाथु सोसा ने इस पुस्तक में केवल ऐतिहासिक घटनाओं का संकलन नहीं किया है, बल्कि भारतीय बुनकर समाज के जीवन, संघर्ष, सांस्कृतिक विरासत, औपनिवेशिक शोषण, स्वतंत्रता चेतना और वर्तमान चुनौतियों का व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें ऐतिहासिक स्रोतों के साथ-साथ क्षेत्रीय अध्ययन, बुनकर परिवारों से संवाद तथा विभिन्न स्थलों के प्रत्यक्ष अवलोकन को भी समाहित किया गया है। यह ग्रंथ हमें स्मरण कराता है कि भारत की आत्मनिर्भरता, सांस्कृतिक समृद्धि और आर्थिक शक्ति के निर्माण में बुनकर समाज का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। भारतीय करघों ने केवल वस्त्रों का निर्माण नहीं किया, बल्कि उन्होंने भारतीय संस्कृति, स्वाभिमान और राष्ट्रीय चेतना को भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षित रखा।

हमें विश्वास है कि यह पुस्तक इतिहासकारों, शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों, सामाजिक चिंतकों, नीति-निर्माताओं तथा भारतीय संस्कृति और श्रम परंपरा में रुचि रखने वाले सभी पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। साथ ही यह नई पीढ़ी को भारतीय बुनकर समाज के गौरवशाली इतिहास और उनके अमूल्य योगदान से परिचित कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।



सूर्या ऑफसेट प्रकाशन इस महत्वपूर्ण कृति के प्रकाशन पर लेखक श्री नाथु सोसा को हार्दिक बधाई देता है तथा आशा करता है कि यह ग्रंथ समाज में श्रम, संस्कृति और इतिहास के प्रति नई चेतना उत्पन्न करेगा । भारत के बुनकरों की यह गाथा केवल अतीत का इतिहास नहीं, बल्कि श्रम, स्वाभिमान और सांस्कृतिक विरासत का जीवंत दस्तावेज है ।

सादर,
मुद्रेश पुरोहित, सूर्या ऑफसेट, अमदावाद

अनुक्रमणिका

१. भारत की प्राचीन बुनाई परंपरा	१
२. ब्रिटिश शासन से पूर्व भारतीय वस्त्र उद्योग की स्वर्णिम परंपरा	९
३. ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन	१३
४. भारतीय बुनकरों पर औपनिवेशिक प्रहार	१७
५. औद्योगिक क्रांति और भारतीय उद्योग का विनाश	२९
६. बुनकरों का मौन प्रतिरोध	३७
७. सामाजिक और आर्थिक दोहरा शोषण	४१
८. स्वतंत्रता चेतना की आधारभूमि	४७
९. करघों की टक-टक से स्वतंत्रता की चेतना तक	५३
१०. इतिहास के साक्षी भारतीय बुनकरों पर इतिहासकारों और विचारकों की दृष्टि...	५५
११. भारतीय बुनकर और १८५७ का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम	५९
१२. बंगाल के बुनकरों की करुण गाथा	६५
१३. गुजरात के बुनकरों का इतिहास	७१
१४. राजस्थान के करघों की जीवित परंपरा इतिहास से वर्तमान तक	७७
१४.१ विशेष अध्ययन - आलूदा	८०
१४.२ विशेष अध्ययन - राजस्थान प्रवास	८४

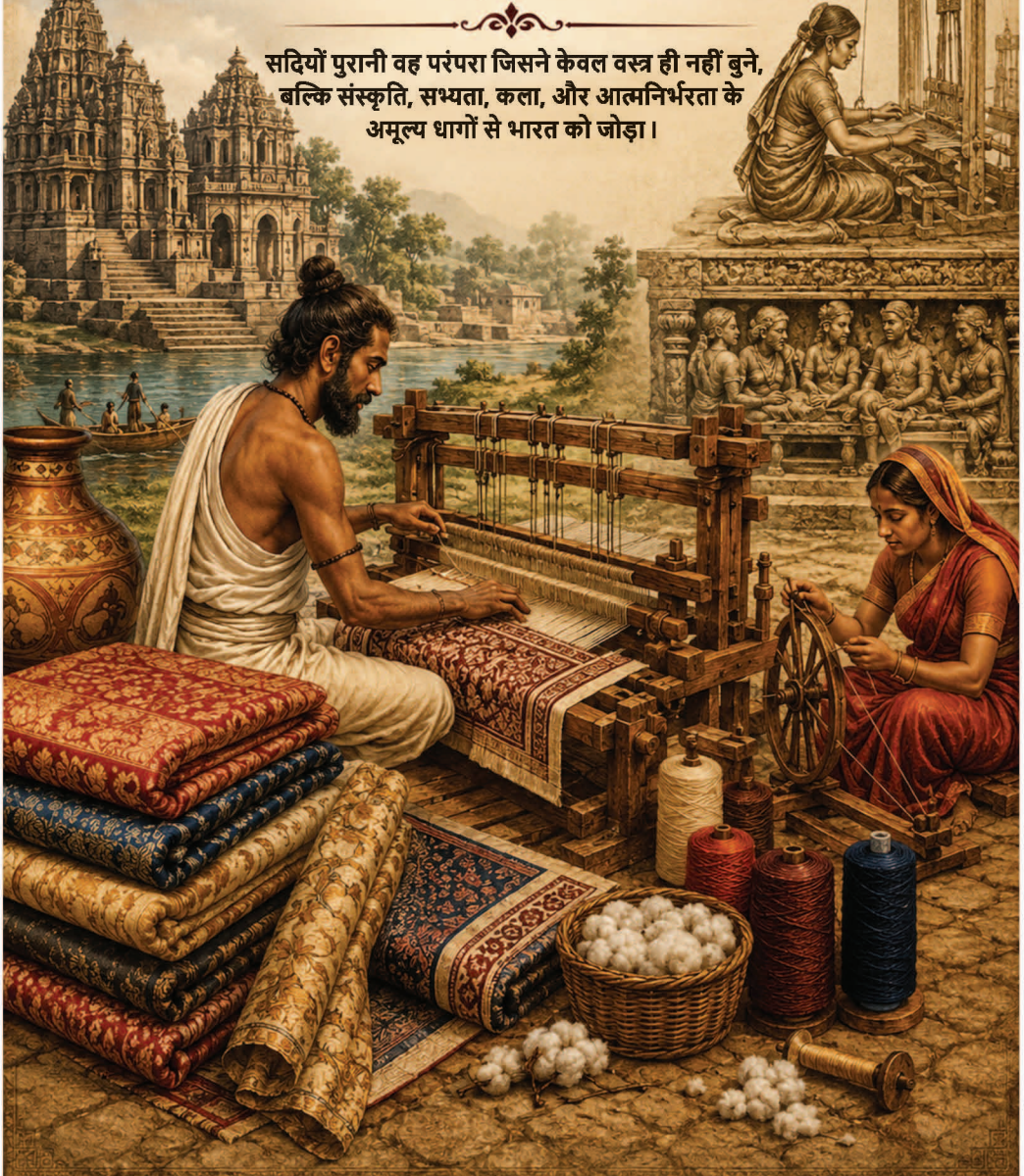


१५. महात्मा गांधी और खादी आंदोलन चरखे से स्वराज तक	८९
१६. डॉ. भीमराव आंबेडकर और श्रम की गरिमा	९५
१७. स्वतंत्र भारत में बुनकर समाज	१०३
१८. जेबरोल के संघर्षरत करघों की मौन पुकार भारतीय बुनकर समाज की वर्तमान स्थिति का एक क्षेत्रीय अध्ययन	१०९
१९. बदलते समय में बुनकर समाज परंपरा, तकनीक और भविष्य के बीच संघर्ष	११५
२०. बुनकर भारत की संस्कृति के सूत्रधार श्रम, स्वाभिमान और सभ्यता की अमर गाथा	१२१

प्रकरण 1

भारत की प्राचीन बुनाई परंपरा

सदियों पुरानी वह परंपरा जिसने केवल वस्त्र ही नहीं बुने,
बल्कि संस्कृति, सभ्यता, कला, और आत्मनिर्भरता के
अमूल्य धागों से भारत को जोड़ा।



१. भारत की प्राचीन बुनाई परंपरा

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य भारत का इतिहास केवल राजाओं, साम्राज्यों और युद्धों का इतिहास नहीं है। यदि इतिहास को केवल सिंहासनों, विजयों और पराजयों के आधार पर समझा जाए, तो भारत की वास्तविक आत्मा कभी समझी ही नहीं जा सकती। किसी भी राष्ट्र की वास्तविक पहचान उसके श्रमशील समाज, उसकी उत्पादन शक्ति, उसकी संस्कृति और “वह उस समाज के दैनिक जीवन, परंपराओं, रीति-रिवाजों, संस्कृति, व्यवहार और जीवन-पद्धति में गहराई से समाई हुई होती है।” भारत की सभ्यता का निर्माण उन करोड़ों किसानों, कारीगरों, मजदूरों और बुनकरों ने किया है, जिन्होंने बिना किसी प्रसिद्धि की अपेक्षा के पीढ़ियों तक इस देश की आर्थिक और सांस्कृतिक नींव को मजबूत बनाए रखा। भारतीय बुनकर समाज इसी श्रमशील परंपरा का एक गौरवशाली अध्याय है। जब संसार के अनेक देश औद्योगिक और आर्थिक दृष्टि से विकास के प्रारंभिक चरण में थे, तब भारत के करघों से निकलने वाले वस्त्र विश्वभर के बाजारों में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। भारतीय वस्त्र केवल व्यापारिक उत्पाद नहीं थे; वे भारतीय संस्कृति, कला, विज्ञान और तकनीकी कौशल के प्रतीक थे। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विकसित हुई बुनाई परंपराएँ स्थानीय संस्कृति, जलवायु, जीवनशैली और सामाजिक संरचना से गहराई से जुड़ी हुई थीं।

सिंधु घाटी सभ्यता से प्राप्त पुरातात्विक प्रमाण यह संकेत देते हैं कि भारत में सूत कातने और वस्त्र निर्माण की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वैदिक साहित्य, बौद्ध ग्रंथों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा विदेशी यात्रियों के विवरणों में भारतीय वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। मध्यकाल तक आते-आते भारत विश्व के सबसे बड़े वस्त्र उत्पादक क्षेत्रों में सम्मिलित हो चुका था। बंगाल की मलमल, बनारस का रेशम, गुजरात का पटोला, दक्षिण भारत के सूती वस्त्र, राजस्थान की रंगकारी, कश्मीर की पश्मीना तथा दक्कन क्षेत्र की विविध बुनाई परंपराएँ भारत की आर्थिक शक्ति का आधार थीं।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक भारतीय वस्त्र उद्योग विश्व व्यापार का महत्वपूर्ण केंद्र था। यूरोप, अरब, फ्रांच, अफ्रीका और दक्षिण-पूर्व एशिया तक भारतीय वस्त्रों की व्यापक मांग थी। भारत का हस्तकरघा उद्योग लाखों परिवारों की आजीविका का आधार था। किन्तु १७५७ का प्लासी युद्ध भारतीय इतिहास में एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ। इस युद्ध के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने केवल राजनीतिक सत्ता प्राप्त नहीं की, बल्कि भारत की आर्थिक संरचना को नियंत्रित करने की प्रक्रिया भी प्रारंभ कर दी। अंग्रेजों ने शीघ्र ही समझ लिया कि भारत की वास्तविक शक्ति उसकी भूमि, उसके संसाधनों और उसके कुटीर उद्योगों में निहित है। इसलिए उन्होंने सबसे पहले भारतीय उत्पादन व्यवस्था को कमजोर करने का प्रयास किया। भारतीय बुनकर इस औपनिवेशिक नीति के सबसे बड़े शिकार बने।

अंग्रेजी व्यापारिक कंपनियाँ भारतीय बुनकरों से अत्यंत कम मूल्य पर वस्त्र खरीदती थीं। अनेक क्षेत्रों में बुनकरों को बाध्यकारी अनुबंधों के अंतर्गत कार्य करना पड़ता था। वे अपने उत्पाद स्वतंत्र रूप से बेच नहीं सकते थे। उत्पादन, मूल्य और वितरण पर कंपनी का नियंत्रण बढ़ता गया। उधर इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति प्रारंभ हो चुकी थी। मशीन आधारित उत्पादन ने वस्त्र उद्योग का स्वरूप बदल दिया। स्पिनिंग जेनी, वाटर फ्रेम, पावर लूम और अन्य तकनीकी आविष्कारों ने इंग्लैंड के उत्पादन को अत्यधिक गति प्रदान की। लेकिन इस औद्योगिक विकास के पीछे एक महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि उसकी आर्थिक नींव भारत सहित उपनिवेशों से प्राप्त संसाधनों पर आधारित थी। भारत से कच्चा माल सस्ते दामों पर इंग्लैंड भेजा गया और इंग्लैंड में निर्मित मशीन उत्पादित वस्त्र भारतीय बाजारों में बेचे जाने लगे। परिणामस्वरूप भारतीय हस्तकरघा उद्योग को असमान प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा।

लॉर्ड विलियम बेंटिक ने १८३४ में भारतीय बुनकरों की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि विश्व के वाणिज्यिक इतिहास में भारतीय बुनकरों जैसी दुर्दशा का उदाहरण दुर्लभ है। इतिहासकारों और अर्थशास्त्रियों ने भी इस स्थिति को भारत

की आर्थिक त्रासदी के रूप में वर्णित किया है। दादाभाई नौरोजी ने अपनी प्रसिद्ध “Drain Theory” के माध्यम से बताया कि किस प्रकार भारत की संपत्ति व्यवस्थित रूप से इंग्लैंड भेजी जा रही थी। भारतीय उद्योगों का विनाश केवल आर्थिक घटना नहीं थी; यह भारत की आत्मनिर्भरता पर सीधा प्रहार था। भारतीय बुनकरों के सामने केवल आर्थिक संकट ही नहीं था। अनेक क्षेत्रों में वे सामाजिक भेदभाव, जातिगत असमानता और संसाधनों की कमी से भी जूझ रहे थे। इस प्रकार उनका संघर्ष दोहरा था—एक ओर औपनिवेशिक सत्ता का आर्थिक शोषण और दूसरी ओर सामाजिक संरचना की विषमताएँ।

फिर भी भारतीय बुनकरों ने संघर्ष जारी रखा।

उन्होंने अपने करघों को जीवित रखा।

उन्होंने अपनी कला को बचाए रखा।

उन्होंने अपनी पहचान को समाप्त नहीं होने दिया।

यही कारण है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि में बुनकर समाज का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। यद्यपि उनके संघर्षों को इतिहास में पर्याप्त स्थान नहीं मिला, किन्तु उनकी चेतना, उनका प्रतिरोध और उनका आत्मसम्मान भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की आधारभूमि का हिस्सा थे।

इतिहासकार एफ. एल. नटराजन ने संकेत किया है कि किसानों, कारीगरों और श्रमिकों द्वारा असहयोग तथा प्रतिरोध के अनेक स्वरूप महात्मा गांधी के संगठित आंदोलनों से पहले ही दिखाई देने लगे थे। इस दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन केवल राजनीतिक नेतृत्व की देन नहीं थी; उसके पीछे श्रमशील समाज की दीर्घकालीन चेतना भी कार्यरत थी। भारतीय बुनकरों का संघर्ष हमें यह सिखाता है कि स्वतंत्रता केवल राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का नाम नहीं है। स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ है—श्रम का सम्मान, आर्थिक न्याय, सामाजिक समानता और आत्मसम्मान की रक्षा। आज आवश्यकता है कि इतिहास के उन भूले-बिसरे



अध्यायों को पुनः सामने लाया जाए, जिनमें भारत के बुनकरों, कारीगरों, किसानों और श्रमिकों की वास्तविक गाथाएँ छिपी हुई हैं। क्योंकि किसी राष्ट्र का वास्तविक गौरव उसके महलों और साम्राज्यों में नहीं, बल्कि उन श्रमशील हाथों में होता है जिन्होंने अपने परिश्रम से उस राष्ट्र की आत्मा को जीवित रखा।

भारतीय बुनकर केवल वस्त्र निर्माता नहीं थे।

वे भारत की सांस्कृतिक स्मृति के संरक्षक थे।

वे आर्थिक आत्मनिर्भरता के आधार थे।

वे लोकजीवन के कलाकार थे और सबसे बढ़कर, वे उस मौन संघर्ष के नायक थे, जिसकी प्रतिध्वनि आज भी भारत के करघों की टक-टक में सुनाई देती है। इसी मौन संघर्ष, इसी श्रमशील चेतना और इसी ऐतिहासिक सत्य को समझने की यात्रा आगामी अध्यायों में आगे बढ़ेगी। भारतीय बुनकरों का संघर्ष केवल करघों का संघर्ष नहीं था। यह उस आत्मा का संघर्ष था जो अपनी पहचान बचाना चाहती थी। यह उस श्रम का संघर्ष था जो सम्मान चाहता था। यह उस समाज का संघर्ष था जो आत्मनिर्भर रहना चाहता था।

अंग्रेजों ने भारतीय उद्योगों को कमजोर किया, बाजारों पर नियंत्रण स्थापित किया और बुनकरों की आर्थिक शक्ति को तोड़ने का प्रयास किया। लेकिन वे भारतीय बुनकरों की चेतना को समाप्त नहीं कर सके।

करघे भले ही कमजोर पड़े हों, लेकिन स्वाभिमान जीवित रहा।

उत्पादन भले घट गया हो, लेकिन परंपरा जीवित रही।

आर्थिक संकट भले आया हो, लेकिन संघर्ष की भावना समाप्त नहीं हुई।

यही कारण है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास केवल युद्धों और राजनीतिक आंदोलनों का इतिहास नहीं है। उसमें करघों की टक-टक भी शामिल है। उसमें बुनकरों का श्रम भी शामिल है। उसमें उन अनगिनत परिवारों का मौन

प्रतिरोध भी शामिल है, जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी कला, अपनी परंपरा और अपने आत्मसम्मान को जीवित रखा। भारतीय स्वतंत्रता की कहानी तब तक पूर्ण नहीं हो सकती, जब तक उसमें भारतीय बुनकरों के संघर्ष को सम्मानपूर्वक स्थान न दिया जाए। क्योंकि भारत की आत्मा केवल तलवारों से नहीं, करघों से भी बनी है।

भारत की प्राचीन बुनाई परंपरा भारतीय बुनकरों के इतिहास और उनके संघर्ष को समझने के लिए आवश्यक है कि हम भारत की प्राचीन बुनाई परंपरा की जड़ों तक पहुँचें। किसी भी समाज के संघर्ष को उसके गौरवशाली अतीत से अलग करके नहीं समझा जा सकता। भारतीय बुनकरों की कहानी केवल अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों के विरुद्ध हुए आर्थिक संघर्ष की कहानी नहीं है, बल्कि यह हजारों वर्षों से विकसित होती आई उस सांस्कृतिक, तकनीकी और आर्थिक परंपरा की कहानी भी है जिसने भारत को विश्व के महानतम वस्त्र उत्पादक देशों में स्थान दिलाया।

सिंधु घाटी सभ्यता और वस्त्र निर्माण की प्रारंभिक परंपरा भारतीय उपमहाद्वीप में वस्त्र निर्माण की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। पुरातत्वविदों के अनुसार सिंधु घाटी सभ्यता (लगभग २६००-१९०० ईसा पूर्व) के समय भी सूत कातने और वस्त्र निर्माण की विकसित परंपरा विद्यमान थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त तकलियों (Spindle Whorls), सूत कातने के उपकरणों तथा कपास के अवशेषों से यह प्रमाणित होता है कि उस समय के लोग कपास उगाने और उससे वस्त्र बनाने की कला से परिचित थे। इतिहासकारों का मत है कि विश्व में कपास के व्यवस्थित उपयोग की प्रारंभिक परंपराओं में भारत का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। सिंधु सभ्यता के लोगों ने केवल कपास का उत्पादन ही नहीं किया, बल्कि उससे वस्त्र निर्माण की तकनीक भी विकसित की। यह तथ्य दर्शाता है कि भारतीय बुनाई परंपरा की जड़ें सभ्यता के प्रारंभिक चरणों तक पहुँचती हैं। जब विश्व के अनेक क्षेत्रों में वस्त्र निर्माण अभी प्रारंभिक अवस्था में था, तब भारत के नगरों में सूत कातने, कपड़ा



बनाने और वस्त्रों के व्यापार की व्यवस्था विकसित हो चुकी थी। यही कारण है कि भारतीय वस्त्र परंपरा को केवल एक उद्योग नहीं, बल्कि सभ्यता की उपलब्धि माना जाता है।

वैदिक साहित्य में वस्त्र और बुनकर, वैदिक काल में वस्त्र निर्माण और बुनाई का उल्लेख अनेक ग्रंथों में मिलता है। ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा अन्य वैदिक साहित्य में वस्त्रों, सूत, तंतु और बुनाई से संबंधित अनेक संदर्भ उपलब्ध हैं। संस्कृत में "तंतु" शब्द धागे के लिए तथा "वाय" या "वायित्री" शब्द बुनकर के लिए प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में जीवन की तुलना भी बुनाई की प्रक्रिया से की गई है। यह केवल साहित्यिक कल्पना नहीं थी, बल्कि यह संकेत था कि उस समय बुनाई समाज के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थी। वस्त्र केवल शरीर ढकने का साधन नहीं थे; वे सामाजिक स्थिति, सांस्कृतिक पहचान और धार्मिक परंपराओं से भी जुड़े हुए थे। वैदिक समाज में सूत काटना और वस्त्र निर्माण एक सम्मानित कार्य माना जाता था। परिवारों में महिलाएँ सूत तैयार करती थीं और पुरुष बुनाई का कार्य करते थे। इस प्रकार बुनाई केवल आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि पारिवारिक और सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग थी।

मौर्यकाल, कौटिल्य और अर्थशास्त्र भारतीय वस्त्र उद्योग की संगठित संरचना का उल्लेख कौटिल्य के प्रसिद्ध ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में भी मिलता है। चौथी-तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के इस ग्रंथ में वस्त्र निर्माण, कारीगरों की भूमिका, उत्पादन व्यवस्था और व्यापारिक नियंत्रण के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। कौटिल्य ने राज्य की आर्थिक व्यवस्था में कारीगरों और शिल्पकारों के महत्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। वस्त्र निर्माण को राजस्व और व्यापार का महत्वपूर्ण स्रोत माना गया था। अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार के वस्त्रों, उनके निर्माण और उनके व्यापार से संबंधित नियमों का उल्लेख मिलता है। यह तथ्य दर्शाता है कि प्राचीन भारत में वस्त्र उद्योग केवल स्थानीय उपयोग तक सीमित नहीं था, बल्कि वह एक संगठित आर्थिक गतिविधि का रूप ले चुका था। बुनकरों, रंगरेजों, सूत तैयार करने वालों और

व्यापारियों की एक विस्तृत श्रृंखला इस व्यवस्था का हिस्सा थी। मौर्यकालीन प्रशासन ने उत्पादन और व्यापार को व्यवस्थित करने के लिए अनेक उपाय किए थे। इससे वस्त्र उद्योग को स्थिरता और संरक्षण प्राप्त हुआ। यह भारतीय आर्थिक इतिहास का वह चरण था, जब कुटीर उद्योग और शिल्पकला राष्ट्रीय समृद्धि के महत्वपूर्ण आधार बने हुए थे।

प्राचीन व्यापार मार्ग और भारतीय वस्त्रों की वैश्विक पहचान, प्राचीन काल से ही भारतीय वस्त्रों की माँग अंतरराष्ट्रीय बाजारों में रही है। भारत के समुद्री और स्थल व्यापार मार्गों ने भारतीय कपड़ों को दूर-दूर तक पहुँचाया। अरब, मिस्र, रोम, फारस और दक्षिण-पूर्व एशिया तक भारतीय वस्त्र निर्यात किए जाते थे। रोमन इतिहासकारों और यात्रियों ने भारतीय वस्त्रों की प्रशंसा की है। रोमन साम्राज्य में भारतीय सूती वस्त्र अत्यंत लोकप्रिय थे। अनेक विद्वानों का मत है कि भारत और रोम के बीच होने वाले व्यापार का एक महत्वपूर्ण भाग वस्त्र उद्योग पर आधारित था।

गुजरात के समुद्री बंदरगाह, दक्षिण भारत के तटीय नगर और उत्तर भारत के व्यापारिक केंद्र भारतीय वस्त्रों को विश्व बाजार तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। भारतीय बुनकरों द्वारा निर्मित कपड़े अपनी गुणवत्ता, रंगों और टिकाऊपन के कारण विशेष रूप से पसंद किए जाते थे। अरब व्यापारियों ने भारतीय वस्त्रों को पश्चिम एशिया और अफ्रीका तक पहुँचाया। वहीं समुद्री मार्गों के माध्यम से भारतीय कपड़े दक्षिण-पूर्व एशिया और चीन तक भी पहुँचे। इस प्रकार भारतीय बुनाई परंपरा केवल स्थानीय उद्योग नहीं रही, बल्कि उसने भारत को वैश्विक व्यापारिक मानचित्र पर प्रतिष्ठित स्थान दिलाया।

भारतीय बुनकर सभ्यता के निर्माता, प्राचीन भारत की आर्थिक समृद्धि में बुनकरों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। वे केवल वस्त्र निर्माता नहीं थे, बल्कि संस्कृति के संवाहक भी थे। उनके द्वारा निर्मित वस्त्रों में स्थानीय परंपराएँ, धार्मिक प्रतीक, सामाजिक मूल्य और कलात्मक अभिव्यक्तियाँ दिखाई देती थीं। भारतीय बुनकरों की पीढ़ियाँ अपने कौशल को केवल व्यवसाय के रूप में नहीं, बल्कि



विरासत के रूप में आगे बढ़ाती थीं। यही कारण है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट बुनाई परंपराएँ विकसित हुईं, जिन्होंने बाद के युगों में विश्वव्यापी पहचान प्राप्त की। यही वह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि थी, जिसने भारत को वस्त्र उत्पादन के क्षेत्र में विश्वगुरु बनाया। किन्तु आने वाले समय में यही समृद्धि विदेशी व्यापारिक शक्तियों की दृष्टि का केंद्र बनी। भारत के करघों से निकलने वाली यह आर्थिक शक्ति आगे चलकर औपनिवेशिक शोषण का लक्ष्य बनी। इस प्रकार भारतीय बुनकरों के संघर्ष की कहानी वास्तव में भारत की प्राचीन समृद्धि, सांस्कृतिक वैभव और आर्थिक आत्मनिर्भरता की कहानी से प्रारंभ होती है। भारतीय करघों का इतिहास केवल वस्त्रों का इतिहास नहीं है; यह भारतीय सभ्यता के विकास, उसके श्रम और उसकी सृजनशीलता का इतिहास है।

"करघे पर चलने वाला हर धागा,
भारत के गौरवशाली इतिहास का एक जीवित अध्याय है।"

"बुनकर ने केवल कपड़ा नहीं बुना,
उसने भारत की पहचान को पीढ़ियों तक जीवित रखा।"

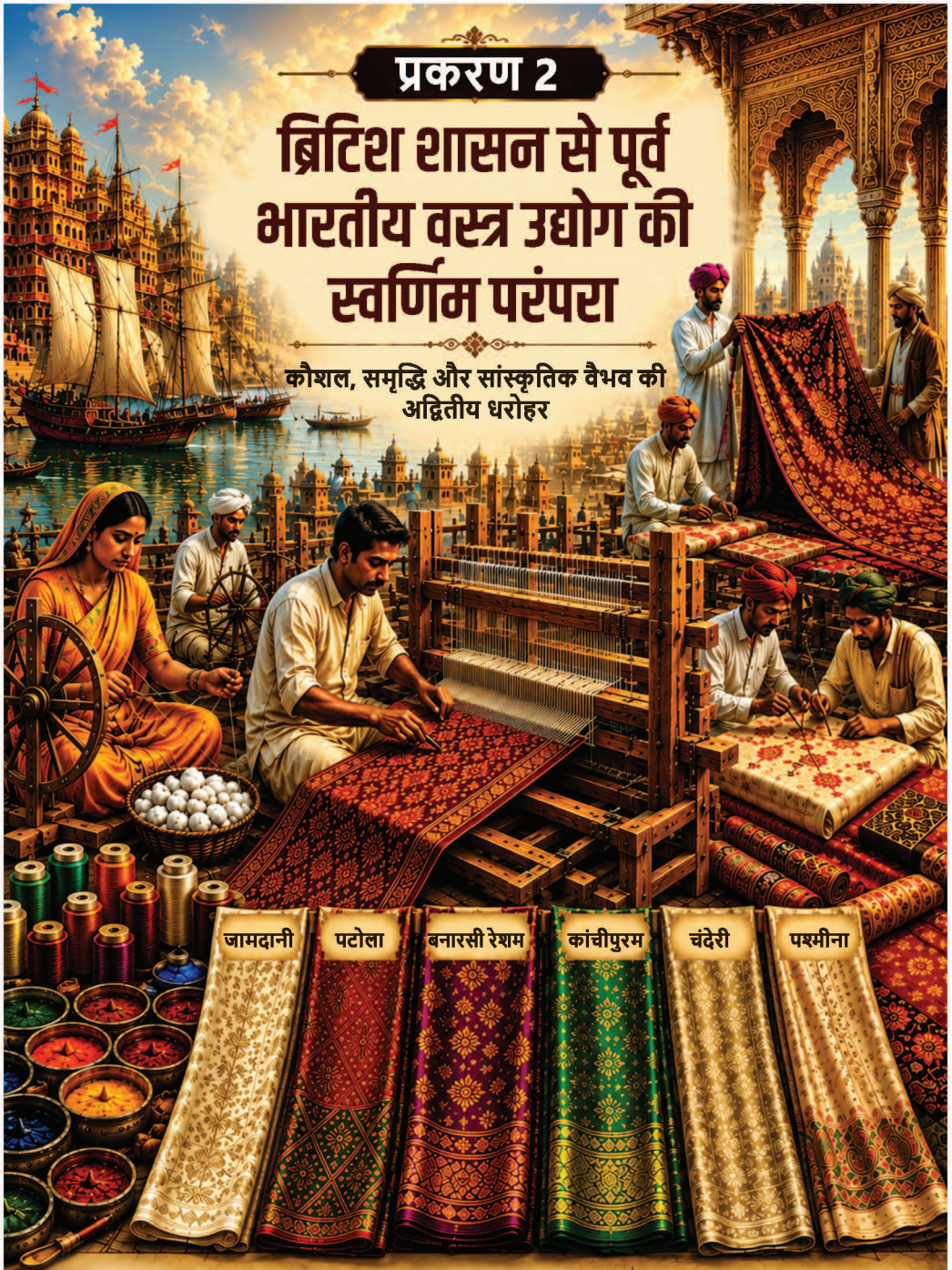
"जिस दिन करघे मौन हो जाते हैं,
उस दिन इतिहास का एक अध्याय अधूरा रह जाता है।"

नाथु सोसा

प्रकरण 2

ब्रिटिश शासन से पूर्व भारतीय वस्त्र उद्योग की स्वर्णिम परंपरा

कौशल, समृद्धि और सांस्कृतिक वैभव की
अद्वितीय धरोहर



जामदानी

पटोला

बनारसी रेशम

कांचीपुरम

चंदेरी

पश्मीना



हार्यों का कौशल,
पीढ़ियों की विरासत



हस्तकरघा की
गौरवशाली भारतीय
परंपरा



रंग, धागे और
संस्कृति का
अद्भुत संगम



आत्मनिर्भर भारत
की ऐतिहासिक
आधारशिला



भारतीय वस्त्रों की
विश्वव्यापी प्रतिष्ठा

२. ब्रिटिश शासन से पूर्व भारतीय वस्त्र उद्योग की स्वर्णिम परंपरा

कौ

शल, समृद्धि और सांस्कृतिक वैभव, कला और वैश्विक प्रतिष्ठा का स्वर्णिम युग भारतीय वस्त्र उद्योग का इतिहास केवल उत्पादन और व्यापार का इतिहास नहीं है, बल्कि यह भारत की सांस्कृतिक समृद्धि, कलात्मक उत्कृष्टता और आर्थिक शक्ति का भी इतिहास है। यदि प्राचीन काल ने भारतीय बुनाई परंपरा की नींव रखी थी, तो मुगल काल ने उसे अभूतपूर्व ऊँचाइयों तक पहुँचाया। सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक भारत विश्व के सबसे बड़े और प्रतिष्ठित वस्त्र उत्पादक देशों में सम्मिलित था। इस काल में भारतीय बुनकरों की कला, तकनीकी दक्षता और सृजनात्मकता ने विश्वभर में ऐसी प्रतिष्ठा अर्जित की, जिसकी तुलना उस समय किसी अन्य देश के वस्त्र उद्योग से करना कठिन था। मुगल शासकों ने वस्त्र उद्योग को केवल व्यापारिक दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि उसे कला और संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग के रूप में भी संरक्षण दिया। शाही दरबारों, राजघरानों, व्यापारिक नगरों और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में भारतीय वस्त्रों की मांग निरंतर बढ़ती गई। परिणामस्वरूप भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट बुनाई परंपराएँ विकसित हुईं, जिन्होंने आने वाली सदियों तक अपनी पहचान बनाए रखी।

ढाका की मलमल हवा में बुना हुआ वस्त्र मुगल काल में यदि किसी भारतीय वस्त्र ने विश्व को सबसे अधिक आकर्षित किया, तो वह बंगाल की प्रसिद्ध ढाका मलमल थी। वर्तमान बांग्लादेश के ढाका क्षेत्र में निर्मित यह वस्त्र अपनी असाधारण महीनता और कोमलता के लिए प्रसिद्ध था। इतिहासकारों के अनुसार मलमल इतनी महीन होती थी कि उसका पूरा थान एक अंगूठी से निकाला जा सकता था। अनेक विदेशी यात्रियों ने लिखा है कि यह वस्त्र इतना हल्का और पारदर्शी होता था कि उसे “Woven Air” अर्थात् “हवा में बुना हुआ कपड़ा” कहा जाता था।

मुगल सम्राटों, नवाबों और राजपरिवारों के लिए विशेष रूप से तैयार की जाने वाली मलमल को विभिन्न नामों से जाना जाता था, जैसे,

आब-ए-रवाँ (बहते पानी जैसी)

शबनम (ओस की बूंद जैसी)

मलमल खास

जमदानी

इन वस्त्रों के निर्माण में अत्यंत कुशल बुनकरों की आवश्यकता होती थी। एक उत्कृष्ट मलमल तैयार करने में कई महीनों का समय लग जाता था। यह केवल वस्त्र नहीं, बल्कि धैर्य, कौशल और कला का अद्भुत उदाहरण थी। बनारसी रेशम भारतीय सौंदर्य और शिल्पकला का प्रतीक उत्तर भारत का बनारस (वर्तमान वाराणसी) मुगल काल में रेशमी वस्त्रों का प्रमुख केंद्र बन गया। यहाँ निर्मित बनारसी रेशम अपनी जरी, बूटेदार डिजाइन और उत्कृष्ट कलात्मकता के कारण अत्यंत लोकप्रिय था। मुगल कला और भारतीय परंपराओं के समन्वय से बनारसी बुनाई में नई शैली विकसित हुई। फूल-पत्तियों, बेल-बूटों और ज्यामितीय आकृतियों से सुसज्जित वस्त्र शाही दरबारों की शोभा बन गए। बनारसी वस्त्र केवल भारत में ही नहीं, अरब, फारस (वर्तमान ईरान), मध्य एशिया, यूरोप और दक्षिण-पूर्व एशिया के बाजारों में भारतीय कपड़ों की अत्यधिक माँग थी। गुजरात, बंगाल, बनारस और दक्षिण भारत के वस्त्र फारस के व्यापारियों द्वारा बड़े पैमाने पर खरीदे जाते थे और अंतरराष्ट्रीय व्यापार का महत्वपूर्ण हिस्सा थे और अरब देशों तक निर्यात किए जाते थे। मुगल दरबारों में इन वस्त्रों का विशेष महत्व था। विवाह, उत्सव और धार्मिक अवसरों पर इनका व्यापक उपयोग होता था। बनारसी बुनकरों की कला ने भारतीय वस्त्र उद्योग को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नई पहचान प्रदान की। आज भी बनारसी साड़ी भारतीय सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक मानी जाती है।

गुजरात का पटोला गणित, कला और धैर्य का अद्भुत संगम मुगल काल में गुजरात का पटोला वस्त्र विश्व के सबसे प्रतिष्ठित और महंगे वस्त्रों में गिना जाता था। विशेष रूप से पाटण क्षेत्र में विकसित यह कला “डबल इकत” तकनीक पर आधारित थी। पटोला निर्माण की प्रक्रिया अत्यंत जटिल होती है। इसमें ताना और

बाना दोनों को बुनाई से पहले विशेष योजना के अनुसार रंगा जाता है। इसके पश्चात अत्यधिक सावधानी और कौशल से बुनाई की जाती है। एक उत्कृष्ट पटोला तैयार करने में कई महीनों से लेकर एक वर्ष तक का समय लग सकता है। यही कारण था कि यह वस्त्र राजपरिवारों, धनी व्यापारियों और विदेशी अभिजात वर्ग में अत्यंत लोकप्रिय था। इंडोनेशिया, थाईलैंड, मलक्का और दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक क्षेत्रों में गुजरात के पटोला वस्त्रों की विशेष मांग थी। कई स्थानों पर इन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा और धार्मिक महत्व से भी जोड़ा जाता था। पटोला केवल वस्त्र नहीं था; वह भारतीय शिल्पकला की उत्कृष्टता का जीवंत उदाहरण था।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार और भारत की आर्थिक समृद्धि मुगल काल में भारतीय वस्त्र उद्योग केवल स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर तक सीमित नहीं था। भारत वैश्विक वस्त्र व्यापार का प्रमुख केंद्र बन चुका था।

भारतीय वस्त्रों की मांग,

अरब देशों में

फारस में

मिस्र में

तुर्की में

अफ्रीका में

दक्षिण-पूर्व एशिया में

यूरोप के अनेक देशों में

व्यापक रूप से थी।

सूरत, खंभात, मछलीपट्टनम, हुगली, कालीकट और अन्य बंदरगाह भारतीय वस्त्रों के निर्यात के प्रमुख केंद्र थे। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियाँ भारत के वस्त्रों को खरीदने के लिए प्रतिस्पर्धा करती थीं।

सत्रहवीं शताब्दी में भारत विश्व के सबसे बड़े वस्त्र निर्यातकों में से एक था। इतिहासकारों का अनुमान है कि उस समय वैश्विक वस्त्र व्यापार का एक बड़ा हिस्सा भारतीय उत्पादन पर आधारित था। भारतीय बुनकरों की कला और श्रम ने भारत को आर्थिक समृद्धि प्रदान की। लाखों परिवारों की आजीविका वस्त्र उद्योग से जुड़ी हुई थी। गाँवों, कस्बों और नगरों में उत्पादन, रंगाई, कताई, बुनाई और व्यापार की एक विशाल श्रृंखला विकसित हो चुकी थी।

स्वर्णिम युग से संघर्ष की ओर मुगल काल भारतीय वस्त्र उद्योग का स्वर्णिम युग था। भारत के करघे समृद्धि के प्रतीक थे। भारतीय बुनकर विश्व बाजार में सम्मानित थे। उनकी कला की प्रशंसा दूर-दूर तक होती थी। किन्तु इतिहास की धारा सदैव एक समान नहीं रहती। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते राजनीतिक परिस्थितियाँ बदलने लगीं। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों का प्रभाव बढ़ने लगा। व्यापार धीरे-धीरे राजनीतिक नियंत्रण में बदलने लगा। भारत की आर्थिक शक्ति, जो सदियों से उसके करघों और कुटीर उद्योगों में गहराई से जुड़ा हुआ था। विदेशी शक्तियों की दृष्टि का केंद्र बनने लगी। यही वह समय था जब भारतीय वस्त्र उद्योग के स्वर्णिम युग पर संकट के बादल मंडराने लगे।

"भारत की सभ्यता को यदि देखना हो,
तो किसी बुनकर के करघे के पास बैठिए।"

"हर धागा एक कहानी है,
हर वस्त्र एक सभ्यता का दस्तावेज़ है।"

नाथु सोसा

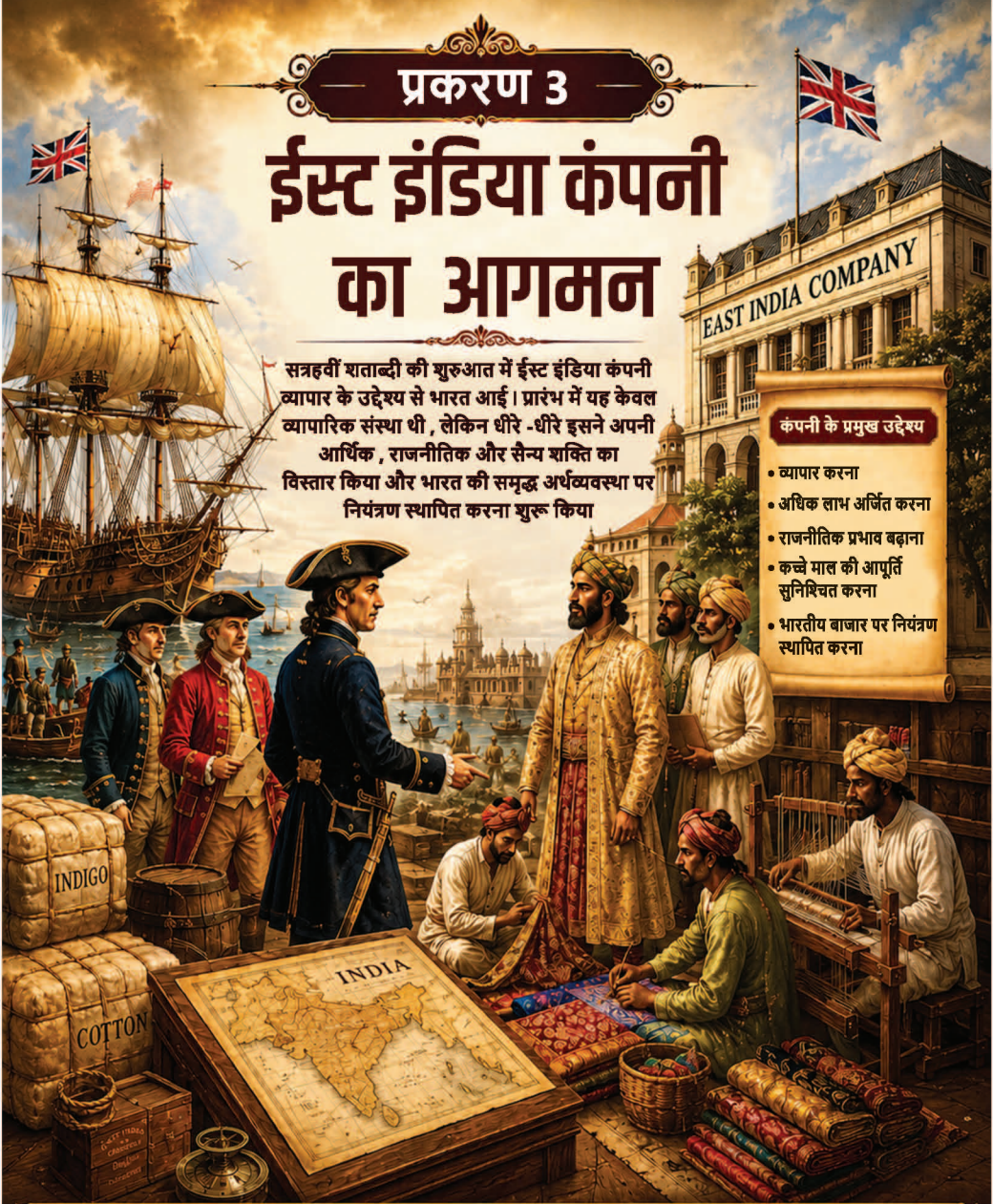
प्रकरण 3

ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन

सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में ईस्ट इंडिया कंपनी व्यापार के उद्देश्य से भारत आई। प्रारंभ में यह केवल व्यापारिक संस्था थी, लेकिन धीरे-धीरे इसने अपनी आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य शक्ति का विस्तार किया और भारत की समृद्ध अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण स्थापित करना शुरू किया।

कंपनी के प्रमुख उद्देश्य

- व्यापार करना
- अधिक लाभ अर्जित करना
- राजनीतिक प्रभाव बढ़ाना
- कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चित करना
- भारतीय बाजार पर नियंत्रण स्थापित करना



1600 ई.
ईस्ट इंडिया कंपनी
की स्थापना
(लंदन)



व्यापारिक केंद्र
और कारखानों
की स्थापना



व्यापार से अपार
लाभ और आर्थिक
शक्ति का विस्तार



सैन्य शक्ति
का निर्माण



राजनीतिक हस्तक्षेप
और भारतीय राज्यों
में दखल अंदाज़ी



भारत पर नियंत्रण
स्थापित करने की
कंपनी की नीति

३. ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन

व्या

पार से सत्ता तक भारतीय वस्त्र उद्योग पर औपनिवेशिक नियंत्रण की शुरुआत भारतीय बुनकरों के संघर्ष को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि भारत के आर्थिक इतिहास में वह निर्णायक मोड़ कब आया, जिसने सदियों से समृद्ध भारतीय वस्त्र उद्योग को धीरे-धीरे पतन की ओर धकेल दिया। यह परिवर्तन अचानक नहीं हुआ था। इसके पीछे एक सुनियोजित औपनिवेशिक नीति कार्यरत थी, जिसका प्रारंभ ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत आगमन से हुआ। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में जब अंग्रेज व्यापारी भारत आए, तब उनका उद्देश्य केवल व्यापार करना था। उस समय भारत विश्व के सबसे समृद्ध देशों में गिना जाता था। भारतीय वस्त्र, मसाले, रेशम, नील, सूती कपड़े और अन्य उत्पादों की अंतरराष्ट्रीय बाजारों में अत्यधिक मांग थी। यूरोप के व्यापारियों के लिए भारत केवल एक बाजार नहीं, बल्कि अपार आर्थिक संभावनाओं का स्रोत था।

व्यापार के बहाने प्रवेश ३१ दिसम्बर १६०० को इंग्लैंड की महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम ने अंग्रेज व्यापारियों को एक चार्टर प्रदान किया, जिसके आधार पर ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना हुई। प्रारंभ में कंपनी का उद्देश्य पूर्वी देशों के साथ व्यापार करना था। भारत में उन्होंने सूरत, मद्रास, मुम्बई और कलकत्ता जैसे स्थानों पर व्यापारिक केंद्र स्थापित किए। उस समय भारतीय वस्त्रों की गुणवत्ता इतनी उत्कृष्ट थी कि यूरोपीय बाजारों में उनकी भारी मांग थी। बंगाल की मलमल, गुजरात के सूती वस्त्र, बनारस का रेशम और दक्षिण भारत के कपड़े अंग्रेज व्यापारियों के लिए अत्यंत लाभदायक सिद्ध हो रहे थे। लेकिन धीरे-धीरे व्यापारिक हित राजनीतिक महत्वाकांक्षा में बदलने लगे। कंपनी ने समझ लिया था कि केवल व्यापार करके उतना लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता, जितना राजनीतिक नियंत्रण स्थापित करके प्राप्त किया जा सकता है। परिणामस्वरूप व्यापारिक गतिविधियों के साथ-साथ उन्होंने भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया।

प्लासी का युद्ध (१७५७) एक निर्णायक मोड़: २३ जून १७५७ को बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला और ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना के बीच प्लासी का युद्ध हुआ।



कंपनी की ओर से रॉबर्ट क्लाइव नेतृत्व कर रहा था। यह युद्ध केवल सैन्य संघर्ष नहीं था; यह भारत के आर्थिक भविष्य को प्रभावित करने वाली ऐतिहासिक घटना थी। मीर जाफर और अन्य विश्वासघातियों की सहायता से ईस्ट इंडिया कंपनी ने इस युद्ध में विजय प्राप्त की। प्लासी की विजय के बाद कंपनी को बंगाल की राजनीति और प्रशासन में व्यापक हस्तक्षेप का अवसर प्राप्त हो गया। इतिहासकारों का मानना है कि प्लासी का युद्ध भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की वास्तविक शुरुआत थी। बंगाल उस समय भारत का सबसे समृद्ध प्रांत था। वस्त्र उत्पादन, व्यापार, कृषि और हस्तशिल्प के कारण इसे भारत की आर्थिक राजधानी कहा जा सकता था। ढाका की मलमल और बंगाल के सूती वस्त्र विश्वभर में प्रसिद्ध थे। प्लासी के बाद अंग्रेजों ने बंगाल की आर्थिक शक्ति को अपने नियंत्रण में लेना प्रारंभ किया। इसका सबसे गंभीर प्रभाव वहाँ के बुनकरों, कारीगरों और व्यापारियों पर पड़ा।

बक्सर का युद्ध (१७६४) आर्थिक सत्ता का विस्तार प्लासी की विजय के बाद भी कंपनी का नियंत्रण पूर्ण नहीं था। इसलिए उन्होंने अपनी शक्ति को और अधिक मजबूत करने का प्रयास किया। २२ अक्टूबर १७६४ को बक्सर का युद्ध हुआ। इस युद्ध में ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय, अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा बंगाल के पूर्व नवाब मीर कासिम की संयुक्त सेना को पराजित किया। बक्सर की विजय का महत्व प्लासी से भी अधिक माना जाता है। इस युद्ध के बाद कंपनी केवल एक व्यापारिक संस्था नहीं रही। वह भारत की राजनीतिक और आर्थिक शक्ति बन गई। १७६५ में मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय ने कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी (राजस्व संग्रह का अधिकार) प्रदान कर दी। यहीं से भारत की आर्थिक संपदा पर कंपनी का प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित हो गया।

भारतीय वस्त्र उद्योग पर आर्थिक नियंत्रण दीवानी अधिकार प्राप्त होने के बाद कंपनी ने अपनी आर्थिक नीतियों को और अधिक कठोर बना दिया। अब कंपनी केवल वस्त्र खरीदने वाली संस्था नहीं थी; वह कर वसूलने वाली शासक शक्ति भी बन चुकी थी।

भारतीय बुनकरों को सबसे अधिक नुकसान इसी चरण में हुआ ।

कंपनी के अधिकारी बुनकरों को बाध्य करते थे कि वे केवल कंपनी के लिए ही उत्पादन करें । उन्हें बाज़ार में स्वतंत्र रूप से व्यापार करने की अनुमति नहीं थी । अनेक क्षेत्रों में बुनकरों को अग्रिम धन (ददनी) दिया जाता था और फिर उन्हें अत्यंत कम कीमत पर वस्त्र देने के लिए मजबूर किया जाता था ।

यदि कोई बुनकर कंपनी की शर्तें मानने से इंकार करता, तो उसे दंडित किया जाता ।

कई स्थानों पर उनके करघे जब्त कर लिए जाते ।

उन्हें आर्थिक रूप से प्रताड़ित किया जाता और उनके व्यापारिक अधिकारों को सीमित कर दिया जाता । बंगाल के बुनकरों की त्रासदी का सबसे अधिक प्रभाव बंगाल के बुनकरों पर पड़ा ।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अनेक विदेशी यात्रियों और इतिहासकारों ने बंगाल के बुनकरों की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है । जो बुनकर कभी विश्व के श्रेष्ठ वस्त्र निर्माता माने जाते थे, वे धीरे-धीरे गरीबी और कर्ज़ के जाल में फँसते चले गए ।

उनकी आय घट गई ।

उनकी स्वतंत्रता समाप्त हो गई ।

उनका कौशल औपनिवेशिक शोषण का शिकार बन गया । व्यापार से साम्राज्य तक ईस्ट इंडिया कंपनी की सबसे बड़ी सफलता यही थी कि उसने व्यापार को सत्ता में बदल दिया । पहले उन्होंने भारतीय वस्त्रों से लाभ कमाया । फिर भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप किया ।



उसके बाद कराधान व्यवस्था पर नियंत्रण स्थापित किया और अंततः भारत की आर्थिक संरचना को अपने औपनिवेशिक हितों के अनुरूप ढाल दिया । भारतीय बुनकरों के लिए यह केवल आर्थिक संकट नहीं था; यह उनके अस्तित्व का संकट था । सदियों से जिन करघों ने भारत को समृद्ध बनाया था, वे अब औपनिवेशिक नीतियों के बोझ तले दबने लगे थे । लेकिन भारतीय बुनकरों की कहानी यहीं समाप्त नहीं होती ।

उन्होंने परिस्थितियों के सामने पूरी तरह आत्मसमर्पण नहीं किया ।

उन्होंने अपनी कला को बचाने का प्रयास किया ।

उन्होंने अपने श्रम की गरिमा को बनाए रखा ।

उन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का विरोध किया ।

यही विरोध आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता चेतना की आधारभूमि बना । इस प्रकार प्लासी और बक्सर केवल दो युद्ध नहीं थे; वे भारतीय बुनकरों के संघर्ष के नए अध्याय की शुरुआत थे । इन युद्धों के बाद भारत का वस्त्र उद्योग विदेशी नियंत्रण में आने लगा और वही प्रक्रिया आगे चलकर भारतीय हस्तकरघा उद्योग के व्यापक पतन का कारण बनी ।

"विदेशी शासन करघे तो तोड़ सका,
पर भारतीय बुनकर का स्वाभिमान नहीं ।"

"भारत की आत्मा मंदिरों में ही नहीं,
करघों की लय में भी बसती है ।"

नाथु सोसा

प्रकरण 4

भारतीय बुनकरों पर औपनिवेशिक प्रहार

परिणाम
बुनकरों की बरबादी
भारत की समृद्धि पर आघात

ब्रिटेन में मशीन निर्मित
सस्ते कपड़ों का उत्पादन

भारत में आयात
और बाज़ार पर कब्ज़ा

ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने भारतीय बुनकरों की समृद्ध परंपरा को योजनाबद्ध तरीके से नष्ट किया। अन्यायपूर्ण नीतियों, जबरदस्ती, करों के बोझ, विदेशी मशीन निर्मित वस्तुओं की बाढ़ और स्थानीय उद्योगों की उपेक्षा ने लाखों बुनकर परिवारों को दरिद्रता, बेरोजगारी और अपमान के अंधकार में धकेल दिया।

औपनिवेशिक नीतियों

- ऊँचे आयात शुल्क भारतीय वस्तुओं पर
- ब्रिटेन के माल पर भारत में कम शुल्क
- भारतीय वस्त्रों के निर्यात पर रोक-टोक और प्रतिबंध
- कंपनी के एजेंटों द्वारा बुनकरों पर अत्याचार

अनुबंध (कॉन्ट्रैक्ट)

- निर्धारित मूल्य पर माल देना होगा
- छप कप पर हिंदीसी अनिवार्य
- चर्ता का उत्खेपन करने पर दंड और सजा

करघे दूटे,
रोज़गार छिना,
सम्मान लूटा,
जीवन बर्बाद।

भारतीय बुनकरों पर पड़े दुष्परिणाम

करघों का विनाश

हजारों करघे नष्ट हुए,
उद्योग समाप्त हुआ।



आर्थिक बर्बादी

बुनकर परिवार कर्ज़ में डूबे,
भुखमरी और दरिद्रता बढ़ी।



बेरोज़गारी और पलायन

रोज़गार छीनने से बुनकरों को
गांव छोड़ने पड़े।



कौशल की उपेक्षा

पीढ़ियों से चला आ रहा कौशल
हासिए पर चला गया



सामाजिक अपमान

स्वाधिनानी बुनकर समुदाय को
अपमान और शोषण सहना पड़ा।



४. भारतीय बुनकरों पर औपनिवेशिक प्रहार

आ

र्थिक शोषण, बाध्यकारी अनुबंध और कर व्यवस्था का दुष्चक्र भारत के वस्त्र उद्योग की समृद्धि और भारतीय बुनकरों की वैश्विक प्रतिष्ठा अंग्रेजों के लिए केवल प्रशंसा का विषय नहीं थी; वह उनके औपनिवेशिक हितों के लिए सबसे बड़ी चुनौती भी थी। ईस्ट इंडिया कंपनी और बाद में ब्रिटिश शासन ने यह भली-भाँति समझ लिया था कि जब तक भारत का हस्तकरघा उद्योग, कुटीर उत्पादन व्यवस्था और स्थानीय व्यापारिक नेटवर्क मजबूत रहेंगे, तब तक भारत आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बना रहेगा। इसीलिए अंग्रेजों ने भारतीय बुनकरों को केवल व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के माध्यम से नहीं, बल्कि योजनाबद्ध आर्थिक नीतियों, बाध्यकारी अनुबंधों, अन्यायपूर्ण मूल्य निर्धारण, स्वतंत्र व्यापार पर प्रतिबंध और कठोर कर व्यवस्था के माध्यम से कमजोर करने का प्रयास किया। यह केवल आर्थिक नीति नहीं थी; यह भारत की उत्पादन शक्ति को नियंत्रित करने की औपनिवेशिक रणनीति थी। बाध्यकारी अनुबंध बुनकरों की स्वतंत्रता का हनन अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय बुनकरों को अपने नियंत्रण में लेने के लिए एक विशेष व्यवस्था विकसित की, जिसे सामान्यतः “ददनी प्रथा” (Dadni System) कहा जाता था। इस व्यवस्था के अंतर्गत कंपनी के एजेंट बुनकरों को अग्रिम धनराशि देते थे। देखने में यह सहायता प्रतीत होती थी, किन्तु वास्तव में यह आर्थिक दासता का साधन बन गई। एक बार अग्रिम राशि स्वीकार कर लेने के बाद बुनकर कंपनी की शर्तों से बंध जाता था। उसे केवल कंपनी के लिए ही उत्पादन करना पड़ता था। वह अपने वस्त्र किसी अन्य व्यापारी को नहीं बेच सकता था, चाहे उसे कहीं अधिक मूल्य क्यों न मिल रहा हो। कई क्षेत्रों में कंपनी के गुमाश्ते (स्थानीय एजेंट) बुनकरों पर दबाव डालते थे कि वे निर्धारित समय पर निश्चित मात्रा में उत्पादन करें। यदि कोई बुनकर आदेश पूरा नहीं कर पाता, तो उसे आर्थिक दंड, उत्पीड़न अथवा अन्य प्रकार की प्रताड़ना का सामना करना पड़ता था। इतिहासकारों ने उल्लेख किया है कि बंगाल, बिहार और उड़ीसा के अनेक क्षेत्रों में गुमाशतों का व्यवहार अत्यंत कठोर

था। वे बुनकरों की स्वतंत्रता को लगभग समाप्त कर चुके थे। बुनकर अब स्वतंत्र उत्पादक नहीं रहे थे; वे कंपनी के नियंत्रण में कार्य करने वाले मजबूर श्रमिक बनते जा रहे थे।

कम कीमत पर खरीद श्रम का संगठित शोषण औपनिवेशिक शोषण का दूसरा महत्वपूर्ण माध्यम था। भारतीय वस्त्रों की जबरन कम कीमत पर खरीद। भारतीय बुनकरों द्वारा निर्मित वस्त्रों की अंतरराष्ट्रीय बाजारों में भारी मांग थी। उनकी गुणवत्ता और लोकप्रियता के कारण उन्हें उचित मूल्य मिलना चाहिए था, किन्तु कंपनी ने अपने राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव का उपयोग करके कीमतों को कृत्रिम रूप से नियंत्रित किया। बुनकरों को उनके उत्पाद का वास्तविक मूल्य नहीं दिया जाता था। कई बार कंपनी के अधिकारी बाजार मूल्य से बहुत कम दरों पर वस्त्र खरीदते थे और फिर उन्हें यूरोप के बाजारों में कई गुना अधिक कीमत पर बेचते थे। इस व्यवस्था में लाभ कंपनी को मिलता था और श्रम का बोझ बुनकरों पर पड़ता था। एक ओर कच्चे माल की कीमत बढ़ रही थी, दूसरी ओर तैयार वस्त्रों का मूल्य घटाया जा रहा था। परिणामस्वरूप बुनकरों की आय लगातार कम होती गई। जो परिवार कभी सम्मानजनक जीवन व्यतीत करते थे, वे धीरे-धीरे आर्थिक संकट में फँसते चले गए। उनके लिए उत्पादन बढ़ाना भी कठिन था और व्यवसाय छोड़ना भी।

यही औपनिवेशिक शोषण की सबसे क्रूर विशेषता थी।

स्वतंत्र व्यापार पर प्रतिबंध भारतीय बुनकरों की सबसे बड़ी शक्ति उनका स्वतंत्र व्यापारिक नेटवर्क था। वे स्थानीय बाजारों, व्यापारिक नगरों, क्षेत्रीय मंडियों और अंतरराष्ट्रीय व्यापारियों के माध्यम से अपने उत्पाद बेचते थे। ईस्ट इंडिया कंपनी ने इस व्यवस्था को अपने लिए खतरा माना। कंपनी नहीं चाहती थी कि भारतीय बुनकर स्वतंत्र रूप से व्यापार करें और उचित मूल्य प्राप्त करें। इसलिए अनेक क्षेत्रों में स्वतंत्र व्यापार पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रतिबंध लगाए गए। कंपनी के अनुबंधों से जुड़े बुनकरों को अन्य व्यापारियों से लेन-देन करने की अनुमति नहीं थी। यदि कोई बुनकर अपने उत्पाद किसी अन्य व्यापारी को बेचने का प्रयास करता, तो उसे

दंडित किया जाता। कुछ स्थानों पर गुमाशते बुनकरों की निगरानी करते थे और उनके व्यापारिक संबंधों पर नियंत्रण रखते थे। इस प्रकार बुनकरों को बाजार की स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा से वंचित कर दिया गया। यह केवल व्यापारिक नियंत्रण नहीं था; यह आर्थिक स्वतंत्रता का हनन था।

गुमाश्ता व्यवस्था औपनिवेशिक नियंत्रण का स्थानीय चेहरा ईस्ट इंडिया कंपनी की नीतियों को लागू करने में गुमाशतों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। गुमाशते स्थानीय स्तर पर कंपनी के प्रतिनिधि होते थे। उनका कार्य बुनकरों से अनुबंध करवाना, उत्पादन की निगरानी करना और वस्त्रों की खरीद सुनिश्चित करना था।

किन्तु अनेक ऐतिहासिक विवरणों में यह उल्लेख मिलता है कि कई गुमाशते अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते थे।

वे बुनकरों पर दबाव डालते थे।

उन्हें धमकाते थे।

उनके भुगतान में देरी करते थे।

और कभी-कभी स्थानीय प्रशासन की सहायता से उन्हें प्रताड़ित भी करते थे।

इस प्रकार बुनकर केवल विदेशी सत्ता से ही नहीं, बल्कि उसके स्थानीय प्रतिनिधियों से भी संघर्ष कर रहे थे।

कर व्यवस्था आर्थिक बोझ का एक और माध्यम भारतीय बुनकरों के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक थी-औपनिवेशिक कर व्यवस्था। ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त करना था। कृषि, व्यापार और उत्पादन से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों पर करों का बोझ बढ़ाया गया।

बुनकरों पर इसका अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ा।

कच्चे माल की लागत बढ़ गई ।

स्थानीय व्यापारिक व्यवस्था प्रभावित हुई ।

उत्पादन की लागत में वृद्धि हुई ।

किन्तु तैयार वस्त्रों का मूल्य कंपनी द्वारा नियंत्रित किया जाता रहा ।

परिणामस्वरूप बुनकरों की आर्थिक स्थिति और अधिक कमजोर होती गई ।

सबसे बड़ी विडंबना यह थी कि एक ओर भारतीय वस्त्र उद्योग पर विभिन्न प्रकार के दबाव डाले जा रहे थे, जबकि दूसरी ओर ब्रिटेन में निर्मित वस्त्रों को भारतीय बाजारों में प्रवेश देने के लिए विशेष सुविधाएँ प्रदान की जा रही थीं ।

समकालीन पर्यवेक्षकों की आँखों से भारतीय बुनकरों की पीड़ा, भारतीय बुनकरों की दुर्दशा का वर्णन केवल भारतीय राष्ट्रवादियों और इतिहासकारों ने ही नहीं किया है । अनेक यूरोपीय यात्रियों, ब्रिटिश अधिकारियों तथा समकालीन पर्यवेक्षकों ने भी अपने लेखन में भारतीय बुनकरों की बदलती परिस्थितियों का उल्लेख किया है ।

अठारहवीं शताब्दी के पूर्व भारत विश्व के प्रमुख वस्त्र उत्पादक देशों में गिना जाता था । यूरोप के व्यापारी भारतीय कपड़ों की गुणवत्ता, रंगाई, डिजाइन और टिकाऊपन की प्रशंसा करते नहीं थकते थे । बंगाल की मलमल, गुजरात का पटोला, बनारस का रेशम और दक्षिण भारत के सूती वस्त्र अंतरराष्ट्रीय व्यापार का महत्वपूर्ण हिस्सा थे । किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी तक आते-आते अनेक विदेशी पर्यवेक्षकों ने यह दर्ज किया कि जिन क्षेत्रों में कभी करघों की निरंतर ध्वनि सुनाई देती थी, वहाँ निर्धनता और बेरोजगारी बढ़ने लगी थी । ब्रिटिश संसद में प्रस्तुत अनेक प्रतिवेदनों में यह स्वीकार किया गया कि भारतीय हस्तकरघा उद्योग विदेशी मशीन निर्मित वस्त्रों की प्रतिस्पर्धा से गंभीर रूप से प्रभावित हुआ । कुछ अधिकारियों ने यह भी माना

कि औपनिवेशिक व्यापार व्यवस्था ने भारतीय उत्पादकों को समान अवसर प्रदान नहीं किए ।

ब्रिटिश लेखक विलियम बोल्ट्स (William Bolts) ने अठारहवीं शताब्दी में बंगाल के बुनकरों की स्थिति का उल्लेख करते हुए लिखा कि कंपनी के एजेंटों द्वारा बुनकरों पर अत्यधिक दबाव डाला जाता था । उन्होंने संकेत किया कि अनेक कारीगर अपनी इच्छा के विरुद्ध उत्पादन करने के लिए विवश थे । इसी प्रकार कई यूरोपीय यात्रियों ने उल्लेख किया कि भारतीय बुनकर असाधारण कौशल के स्वामी थे, किन्तु उनकी आर्थिक स्थिति लगातार कमजोर होती जा रही थी । यह विरोधाभास स्वयं औपनिवेशिक व्यवस्था की वास्तविकता को उजागर करता है ।

एक ओर भारतीय वस्त्रों की गुणवत्ता की प्रशंसा की जाती थी, दूसरी ओर उन्हीं वस्त्रों को बनाने वाले कारीगर निर्धनता की ओर धकेले जा रहे थे । इस प्रकार भारतीय बुनकरों की पीड़ा केवल भारतीय स्रोतों में ही नहीं, बल्कि विदेशी पर्यवेक्षकों के लेखन में भी परिलक्षित होती है । यह इस बात का प्रमाण है कि भारतीय वस्त्र उद्योग का पतन कोई कल्पना या अतिशयोक्ति नहीं था, बल्कि उस समय की एक व्यापक ऐतिहासिक वास्तविकता थी ।

मैनचेस्टर की चमक और भारतीय बुनकरों का अंधकार अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में जब इंग्लैंड का मैनचेस्टर औद्योगिक क्रांति का प्रतीक बन रहा था, उसी समय भारत के लाखों बुनकर निर्धनता, बेरोजगारी और आर्थिक विनाश का सामना कर रहे थे । ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में मैनचेस्टर को वस्त्र उद्योग की राजधानी कहा जाता है । वहाँ की विशाल कपड़ा मिलें, ऊँची चिमनियाँ, मशीनों की गर्जना और बढ़ती हुई समृद्धि को औद्योगिक प्रगति का प्रतीक माना जाता है । किन्तु इस समृद्धि की एक दूसरी कहानी भी है, जिसे इतिहास के पन्नों में अक्सर पर्याप्त स्थान नहीं मिला ।

यह समृद्धि केवल इंग्लैंड की तकनीकी प्रगति का परिणाम नहीं थी; इसके पीछे भारत जैसे उपनिवेशों के संसाधनों, श्रम और बाजारों का व्यापक शोषण भी छिपा हुआ था ।

जिस समय मैनचेस्टर की मिलें दिन-रात चल रही थीं, उसी समय बंगाल, गुजरात, बनारस, दक्षिण भारत और राजस्थान के असंख्य करघे मौन होते जा रहे थे । जिन हाथों ने सदियों तक विश्व के लिए उत्कृष्ट वस्त्र तैयार किए थे, वे हाथ बेरोजगारी और निर्धनता की ओर धकेले जा रहे थे ।

ब्रिटिश नीतियों ने भारतीय वस्त्र उद्योग को प्रतिस्पर्धा के माध्यम से नहीं, बल्कि योजनाबद्ध आर्थिक नियंत्रण के माध्यम से कमजोर किया । भारतीय बुनकरों से सस्ते दामों पर वस्त्र खरीदे गए, उनके स्वतंत्र व्यापार पर प्रतिबंध लगाए गए और ब्रिटिश मिलों में बने कपड़ों के लिए भारत को विशाल बाजार में परिवर्तित कर दिया गया ।

परिणामस्वरूप भारत के अनेक बुनकर परिवार आर्थिक रूप से टूट गए । अनेक करघे बंद हो गए । अनेक कारीगरों को अपना पैतृक व्यवसाय छोड़कर मजदूरी और कृषि कार्य अपनाने पड़े ।

इस संदर्भ में इतिहासकारों ने उचित ही कहा है कि, “मैनचेस्टर की समृद्धि भारतीय करघों की चुप्पी पर खड़ी हुई थी ।”

यह कथन केवल आर्थिक सत्य नहीं, बल्कि औपनिवेशिक शोषण की वास्तविकता का प्रतीक है ।

भारत के जिन बुनकरों ने कभी विश्व बाजारों को वस्त्र प्रदान किए थे, वही बुनकर विदेशी कपड़ों के उपभोक्ता बनने को विवश कर दिए गए । एक ओर इंग्लैंड

की मिलों में उत्पादन बढ़ रहा था, तो दूसरी ओर भारत के गाँवों में निर्धनता और बेरोजगारी बढ़ रही थी ।

मैनचेस्टर की चमकदार इमारतों और औद्योगिक वैभव के पीछे भारतीय बुनकरों की पीड़ा, उनका संघर्ष और उनका मौन प्रतिरोध भी छिपा हुआ था ।

इसीलिए भारतीय बुनकरों का इतिहास केवल आर्थिक इतिहास नहीं है; यह औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष, आत्मसम्मान और अस्तित्व की रक्षा की भी गाथा है ।

जब हम औद्योगिक क्रांति की सफलता का अध्ययन करते हैं, तब हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उस सफलता की कीमत भारत के लाखों श्रमजीवी परिवारों ने चुकाई थी ।

मैनचेस्टर की मिलों ने वस्त्र अवश्य बनाए, लेकिन भारतीय करघों ने सभ्यता, संस्कृति और स्वाभिमान को जीवित रखा ।

असमान व्यापार नीति ब्रिटिश शासन की व्यापारिक नीति का मूल उद्देश्य ब्रिटिश उद्योगों को लाभ पहुँचाना था । भारत से कच्चा कपास सस्ते दामों पर इंग्लैंड भेजा जाता था ।

वहाँ मशीनों द्वारा वस्त्र तैयार किए जाते थे ।

फिर वही वस्त्र भारत में बेचे जाते थे ।

इस प्रकार भारत कच्चे माल का आपूर्तिकर्ता और तैयार माल का उपभोक्ता बनता जा रहा था ।

यह स्थिति भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत हानिकारक सिद्ध हुई ।

भारतीय बुनकर दोहरी मार झेल रहे थे,

उनके उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिल रहा था ।

विदेशी मशीन निर्मित वस्त्र उनके बाजारों पर कब्जा कर रहे थे ।

आर्थिक शोषण से सामाजिक संकट तक इन औपनिवेशिक नीतियों का प्रभाव केवल उद्योग तक सीमित नहीं रहा ।

इसका असर पूरे समाज पर पड़ा ।

अनेक बुनकर परिवार कर्ज में डूब गए ।

कुछ ने अपना व्यवसाय छोड़ दिया ।

कुछ कृषि मजदूर बन गए ।

कुछ शहरों की ओर पलायन करने को विवश हुए ।

पीढ़ियों से चली आ रही कौशल परंपराएँ संकट में पड़ने लगीं ।

जहाँ कभी करघों की निरंतर ध्वनि सुनाई देती थी, वहाँ धीरे-धीरे सन्नाटा छाने लगा ।

मौन प्रतिरोध और आत्मसम्मान की रक्षा

किन्तु भारतीय बुनकरों की कहानी केवल पीड़ा की कहानी नहीं है ।

यह प्रतिरोध की कहानी भी है ।

यह आत्मसम्मान की कहानी भी है ।

उन्होंने अपनी कला को जीवित रखा ।

उन्होंने अपने कौशल को सुरक्षित रखा ।

उन्होंने अपनी पहचान को समाप्त नहीं होने दिया ।

यद्यपि उनके संघर्ष को इतिहास के मुख्य पृष्ठों में पर्याप्त स्थान नहीं मिला, फिर भी उनका मौन प्रतिरोध भारतीय स्वतंत्रता चेतना की आधारभूमि का महत्वपूर्ण हिस्सा था ।

भारतीय बुनकरों पर औपनिवेशिक प्रहार केवल आर्थिक नीति का परिणाम नहीं था । यह भारत की आत्मनिर्भर उत्पादन व्यवस्था, उसकी सांस्कृतिक शक्ति और उसके श्रम आधारित समाज पर किया गया सुनियोजित आक्रमण था ।

बाध्यकारी अनुबंधों ने उनकी स्वतंत्रता छीनी ।

कम कीमतों ने उनके श्रम का मूल्य घटाया ।

व्यापारिक प्रतिबंधों ने उनकी आर्थिक स्वायत्तता समाप्त की और कर व्यवस्था ने उनके जीवन को और अधिक कठिन बना दिया ।

ब्रिटिश कानून और भारतीय बुनकरों की पराधीनता दमन, नियंत्रण और आर्थिक गुलामी का सुनियोजित तंत्र, भारतीय बुनकरों के इतिहास का अध्ययन करते समय यह स्पष्ट होता है कि अंग्रेजों ने केवल व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के माध्यम से भारतीय वस्त्र उद्योग को कमजोर नहीं किया, बल्कि कानूनों, प्रशासनिक नियंत्रण और आर्थिक दंड की एक ऐसी व्यवस्था विकसित की, जिसने लाखों बुनकरों को धीरे-धीरे पराधीनता की स्थिति में पहुँचा दिया । ब्रिटिश शासन को यह भली-भाँति ज्ञात था कि भारतीय बुनकर केवल वस्त्र निर्माता नहीं हैं । वे भारत की आर्थिक आत्मनिर्भरता के आधार स्तंभ हैं । भारत के सूती, रेशमी और हस्तनिर्मित वस्त्र विश्व के अनेक देशों में सम्मानपूर्वक उपयोग किए जाते थे । यही कारण था कि अंग्रेजी उद्योगों के विकास के लिए भारतीय बुनकरों को कमजोर करना आवश्यक समझा गया ।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने क्रमशः ऐसे अनेक नियम लागू किए जिनके माध्यम से बुनकरों की स्वतंत्रता सीमित कर दी गई ।

२२ अप्रैल १७८२ का अधिनियम, इस कानून के अनुसार भारतीय बुनकर किसी अन्य यूरोपीय व्यापारी के साथ व्यापार नहीं कर सकते थे । उन्हें केवल कंपनी के लिए उत्पादन करने के लिए बाध्य किया गया । यदि कोई बुनकर किसी अन्य व्यापारी को वस्त्र बेचता हुआ पाया जाता, तो उसका माल जब्त कर लिया जाता और उसके विरुद्ध मुकदमा चलाया जाता था । यह कानून वास्तव में व्यापारिक नियंत्रण नहीं, बल्कि आर्थिक गुलामी की शुरुआत था ।

१९ जुलाई १७८६ का अधिनियम, इस अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक बुनकर को एक विशेष पहचान पत्र दिया जाता था । उसमें उसका नाम, पता, अग्रिम राशि तथा उत्पादन की समय सीमा दर्ज की जाती थी । बाहरी दृष्टि से यह प्रशासनिक व्यवस्था प्रतीत होती है, किन्तु वास्तविकता में यह निगरानी और नियंत्रण का साधन थी । बुनकरों पर चौकीदार नियुक्त किए गए, ताकि वे किसी अन्य व्यापारी से संपर्क न कर सकें । विडंबना यह थी कि इन चौकीदारों का खर्च भी बुनकरों से ही वसूला जाता था ।

२३ जुलाई १७८६ का अधिनियम, इस कानून ने बुनकरों को निर्धारित समय सीमा में उत्पादन पूरा करने के लिए बाध्य किया । यदि कपड़ा समय पर तैयार नहीं होता, तो आर्थिक दंड लगाया जाता था ।

मजदूरी प्राप्त करने के लिए भी उन्हें पूर्व आवेदन करना पड़ता था । इस प्रकार श्रम करने वाला व्यक्ति अपने ही श्रम के प्रतिफल के लिए अंग्रेजी अधिकारियों पर निर्भर बना दिया गया ।

३० सितम्बर १७८९ का अधिनियम, यह अधिनियम और भी कठोर था । यदि कोई बुनकर निर्धारित समय में उत्पादन पूरा नहीं कर पाता, तो उसे दी गई अग्रिम

राशि ३५ प्रतिशत ब्याज सहित वापस ली जाती थी । पहले से निर्धन बुनकरों के लिए यह व्यवस्था कर्ज और भय के चक्र में फँसाने वाली सिद्ध हुई ।

१७९७ का अधिनियम, इस कानून के अंतर्गत बंगाल के बुनकरों को कंपनी के लिए कार्य करना अनिवार्य कर दिया गया । यदि वे कंपनी के आदेशों का पालन नहीं करते, तो कारावास तक का प्रावधान था । इस प्रकार स्वतंत्र कारीगरों को वस्तुतः बंधुआ श्रमिक बना दिया गया ।

१८१३ का चार्टर अधिनियम, विनाश का निर्णायक मोड़: सन् १८१३ का चार्टर अधिनियम भारतीय वस्त्र उद्योग के लिए एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ । इस अधिनियम के बाद अंग्रेजी निर्मित मशीन उत्पादित वस्त्र भारत में लगभग निर्बाध रूप से आने लगे । दूसरी ओर भारतीय वस्त्रों पर भारी शुल्क लगाए गए । फलस्वरूप अंग्रेजी कपड़े भारतीय बाजारों में सस्ते और भारतीय कपड़े महंगे हो गए । यह मुक्त व्यापार नहीं था । यह औपनिवेशिक सत्ता द्वारा संचालित असमान व्यापार व्यवस्था थी ।

कानून से व्यापार तक, शोषण का संगठित ढाँचा अंग्रेजों ने केवल कानून नहीं बनाए । उन्होंने न्याय व्यवस्था, कर व्यवस्था, व्यापार व्यवस्था और प्रशासनिक तंत्र को भी अपने हित में ढाल लिया । यदि कोई बुनकर शिकायत करता, तो उसकी शिकायत को प्रायः असत्य घोषित कर दिया जाता । यदि कोई अधिकारी अत्याचार करता, तो उसे संरक्षण प्राप्त होता । इस प्रकार कानून न्याय का माध्यम न रहकर शोषण का उपकरण बन गया ।

बुनकरों का संघर्ष, पराधीनता के विरुद्ध मौन प्रतिरोध इन सभी अत्याचारों के बावजूद भारतीय बुनकरों ने अपने कौशल, आत्मसम्मान और सांस्कृतिक पहचान को पूरी तरह समाप्त नहीं होने दिया । उन्होंने करघों को जीवित रखा । उन्होंने अपनी परंपरा को बचाए रखा । उन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियों में भी श्रम की गरिमा को बनाए रखा । यही कारण है कि भारतीय स्वतंत्रता चेतना की प्रारंभिक धारा में बुनकरों

का संघर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उनका प्रतिरोध तलवारों से नहीं, बल्कि करघों की टक-टक, श्रम की साधना और आत्मसम्मान की रक्षा के माध्यम से व्यक्त हुआ।

ब्रिटिश शासन द्वारा बनाए गए कानून केवल प्रशासनिक प्रावधान नहीं थे; वे भारतीय वस्त्र उद्योग को नियंत्रित करने और अंग्रेजी उद्योगों को लाभ पहुँचाने की सुनियोजित रणनीति का हिस्सा थे।

किन्तु इतिहास का सत्य यह भी है कि इन कठोर परिस्थितियों के बावजूद भारतीय बुनकरों ने अपनी सांस्कृतिक चेतना, श्रमशीलता और आत्मसम्मान को जीवित रखा।

आज जब हम भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का अध्ययन करते हैं, तब यह स्मरण रखना आवश्यक है कि स्वतंत्रता केवल रणभूमि में नहीं जीती गई थी; वह करघों, चरखों, श्रम और मौन प्रतिरोध की अग्नि में भी गढ़ी गई थी।

"धागे जब इतिहास से जुड़ते हैं,
तब वे केवल वस्त्र नहीं, विरासत बन जाते हैं।"

"बुनकर के हाथों की मेहनत,
किसी भी साम्राज्य की शक्ति से बड़ी होती है।"

"स्वदेशी का पहला स्वर,
किसी मंच से नहीं, करघे से उठा था।"

नाथु सोसा

यूरोप में औद्योगिक क्रांति
१८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में

प्रकरण 5

भारतीय उद्योग पर विनाशकारी प्रभाव

औद्योगिक क्रांति और भारतीय उद्योग का विनाश

- भारतीय वस्त्रों पर भारी कर
- ब्रिटिश वस्त्रों को भारत में बिना कर के प्रवेश
- भारतीय वस्त्रों का निर्यात प्रतिबंधित
- कच्चे माल का निर्यात, तैयार माल का आयात
- भारतीय बुनकरों का आर्थिक शोषण और विनाश

औद्योगिक क्रांति ने यूरोप में उत्पादन
की प्रकृति ही बदल दी।

मशीनों से बने सस्ते और बड़े पैमाने पर
तैयार वस्त्रों ने विश्व बाज़ार पर
कब्जा कर लिया।

ब्रिटिश शासकों ने अपनी नीतियों,
कानूनों और व्यापारिक चालों से
भारतीय हस्तशिल्प और करघा उद्योग
को योजनाबद्ध तरीके से नष्ट कर दिया।

जिस भारत को कभी "विश्व की
कार्यशाला" कहा जाता था, वह ब्रिटिश
औद्योगिक हितों की भेंट चढ़ गया।

- भाप इंजन का आविष्कार
- मशीनों का व्यापक उपयोग
- बड़े कारखानों की स्थापना
- बड़े पैमाने पर उत्पादन
- उत्पादन की लागत में कमी

सस्ते मशीन निर्मित वस्त्रों
का बड़े पैमाने पर उत्पादन

हजारों बुनकर
रोजगार से वंचित,
भुखमरी और गरीबी
की ओर धकेले गए।

मशीन निर्मित वस्त्र
ब्रिटेन से भारत
आयात

भारतीय हस्तनिर्मित वस्त्र
का निर्यात प्रतिबंधित

भारतीय उद्योग के विनाश के परिणाम



हस्तकरघा उद्योग
का पतन और
बुनकरों का
रोजगार छिनना



करोड़ों बुनकर
परिवारों का
आर्थिक और
सामाजिक पतन



भारत से धन
का विशाल
पलायन



गरीबी, भुखमरी
और दयनीय
जीवन की
स्थितियाँ



पारंपरिक कला,
कौशल और
तकनीक का
नाश



आर्थिक गुलामी
और भारत की
स्वावलंबी अर्थव्यवस्था
का विनाश

“ जिस भारत के वस्त्र विश्व में प्रसिद्ध थे, उसी भारत को पराधीन बनाकर
उसकी करघों की टक-टक को हमेशा के लिए धीमा कर दिया गया। ”

५. औद्योगिक क्रांति और भारतीय उद्योग का विनाश

म

शीनों का उदय, करघों का संघर्ष और भारत की आर्थिक त्रासदी अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में विश्व इतिहास में एक ऐसी घटना घटित हुई जिसने केवल यूरोप की अर्थव्यवस्था को ही नहीं, बल्कि एशिया, अफ्रीका और विशेष रूप से भारत के आर्थिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित किया। यह घटना थी। औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) औद्योगिक क्रांति को सामान्यतः विज्ञान और तकनीक की प्रगति का प्रतीक माना जाता है। वास्तव में इसने उत्पादन क्षमता, परिवहन व्यवस्था और व्यापार के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन किए। किन्तु भारत जैसे उपनिवेशित देशों के लिए इसके परिणाम अत्यंत पीड़ादायक सिद्ध हुए। इंग्लैंड के कारखानों में मशीनों की गति जितनी तेज हुई, भारत के करघों की ध्वनि उतनी ही धीमी पड़ती गई। भारतीय बुनकरों के लिए औद्योगिक क्रांति केवल तकनीकी परिवर्तन नहीं थी; वह उनके जीवन, उनकी आजीविका और उनकी सांस्कृतिक पहचान पर पड़ा एक गहरा आघात थी।

स्पिनिंग जेनी मशीन युग की शुरुआत: सन् १७६४ में इंग्लैंड के जेम्स हार्ग्रीव्स ने स्पिनिंग जेनी (Spinning Jenny) का आविष्कार किया। यह मशीन एक साथ अनेक धागों को कात सकती थी। पहले जहाँ एक व्यक्ति एक समय में केवल एक धागा तैयार कर सकता था, वहीं स्पिनिंग जेनी के माध्यम से कई धागे एक साथ तैयार होने लगे। यह आविष्कार ब्रिटिश वस्त्र उद्योग के लिए क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। उत्पादन की गति बढ़ गई। श्रम लागत कम हो गई और बड़े पैमाने पर कपड़ा निर्माण संभव हो गया। इंग्लैंड के उद्योगपतियों ने शीघ्र ही समझ लिया कि मशीनों की सहायता से वे विश्व के वस्त्र बाजार पर नियंत्रण स्थापित कर सकते हैं। लेकिन इस औद्योगिक प्रगति का दूसरा पक्ष भी था। जिस समय इंग्लैंड में मशीनें उत्पादन बढ़ा रही थीं, उसी समय भारत के लाखों हस्तकरघा बुनकर अपने पारंपरिक कौशल के साथ प्रतिस्पर्धा करने को विवश हो रहे थे।

पावर लूम करघों के सामने नई चुनौती स्पिनिंग जेनी के बाद अनेक तकनीकी आविष्कार हुए। रिचर्ड आर्कराइट की वाटर फ्रेम, सैमुअल क्रॉम्पटन की स्पिनिंग म्यूल और एडमंड कार्टराइट के पावर लूम (Power Loom) ने वस्त्र उद्योग की संरचना ही बदल दी। विशेष रूप से पावर लूम ने हस्तकरघा उद्योग के सामने अभूतपूर्व चुनौती खड़ी कर दी। जहाँ भारतीय बुनकर एक वस्त्र तैयार करने में कई दिन लगाते थे, वहीं मशीनें उसी समय में कई गुना अधिक उत्पादन करने लगीं। मशीन आधारित उत्पादन ने वस्त्रों की लागत को कम कर दिया। परिणामस्वरूप ब्रिटिश वस्त्र सस्ते होने लगे। दूसरी ओर भारतीय हस्तनिर्मित वस्त्र अपेक्षाकृत महंगे दिखाई देने लगे, यद्यपि उनकी गुणवत्ता और कलात्मकता कहीं अधिक श्रेष्ठ थी। बाजार धीरे-धीरे मशीनों के पक्ष में झुकने लगा।

ब्रिटिश मिल उद्योग का विस्तार उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक मैनचेस्टर, लैंकाशायर और इंग्लैंड के अन्य औद्योगिक नगर विश्व के प्रमुख वस्त्र उत्पादन केंद्र बन चुके थे। इन मिलों में हजारों श्रमिक कार्य करते थे और मशीनों की सहायता से बड़े पैमाने पर कपड़ा तैयार किया जाता था। ब्रिटिश उद्योगपतियों को अब एक विशाल बाजार की आवश्यकता थी।

भारत उनके लिए सबसे उपयुक्त बाजार था।

क्योंकि,

भारत में विशाल जनसंख्या थी।

कपड़ों की निरंतर मांग थी।

और सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि भारत अब ब्रिटिश शासन के नियंत्रण में था।

अंग्रेजों ने अपने राजनीतिक प्रभुत्व का उपयोग करके भारतीय बाजारों को ब्रिटिश उत्पादों के लिए खोल दिया।

भारत से कच्चा कपास इंग्लैंड भेजा जाता था ।

वहाँ उससे मशीनों द्वारा कपड़ा तैयार किया जाता था ।

और फिर वही कपड़ा भारत में बेचा जाता था ।

यह औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा विरोधाभास था ।

जिस देश ने विश्व को वस्त्र निर्माण की कला सिखाई थी, वही देश अब विदेशी कपड़ों का उपभोक्ता बनने लगा ।

भारतीय बाजारों पर ब्रिटिश कब्जा

ब्रिटिश शासन ने केवल मशीनों के माध्यम से प्रतिस्पर्धा नहीं की ।

उन्होंने व्यापारिक और कर संबंधी नीतियों का भी उपयोग किया ।

भारतीय वस्त्रों पर विभिन्न प्रकार की बाधाएँ लगाई गई ।

दूसरी ओर ब्रिटिश मिलों में निर्मित वस्त्रों को विशेष सुविधाएँ प्रदान की गई ।

अनेक इतिहासकारों ने उल्लेख किया है कि भारतीय वस्त्रों पर ब्रिटेन में भारी शुल्क लगाए गए, जबकि ब्रिटिश कपड़ों को भारत में अपेक्षाकृत आसान प्रवेश मिला ।

इस असमान व्यवस्था ने भारतीय उद्योग को गंभीर क्षति पहुँचाई ।

धीरे-धीरे भारतीय बाजार विदेशी कपड़ों से भरने लगे ।

मैनचेस्टर का कपड़ा भारतीय नगरों और गाँवों तक पहुँचने लगा ।

भारतीय बुनकरों के सामने अस्तित्व का संकट खड़ा हो गया ।

ढाका की मलमल से मैनचेस्टर के कपड़े तक इस परिवर्तन का सबसे दुखद उदाहरण बंगाल में देखने को मिलता है । जो क्षेत्र कभी ढाका मलमल के लिए विश्व प्रसिद्ध था, वही क्षेत्र धीरे-धीरे आर्थिक संकट का केंद्र बनने लगा ।

अनेक बुनकरों ने अपना व्यवसाय छोड़ दिया ।

कई परिवार निर्धनता की ओर धकेल दिए गए ।

कुछ कृषि मजदूर बन गए ।

कुछ अन्य कार्यों की तलाश में भटकने लगे ।

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत के अनेक पारंपरिक उद्योग इसी प्रकार प्रभावित हुए ।

ढाका, मुर्शिदाबाद, बनारस, सूरत, पाटण, मछलीपट्टनम और अन्य उत्पादन केंद्रों की आर्थिक संरचना बदलने लगी । भारतीय उद्योग का सुनियोजित विनाश कुछ इतिहासकारों ने इस प्रक्रिया को केवल औद्योगिक प्रतिस्पर्धा का परिणाम माना है, किन्तु अनेक विद्वानों का मत है कि यह केवल तकनीकी परिवर्तन नहीं था । यदि केवल मशीनों की प्रतिस्पर्धा होती, तो भारतीय उद्योग को भी तकनीकी विकास का अवसर मिलना चाहिए था । लेकिन औपनिवेशिक शासन के कारण भारत को वह अवसर नहीं मिला । ब्रिटिश नीतियों का उद्देश्य भारतीय उद्योगों का विकास नहीं, बल्कि ब्रिटिश उद्योगों का विस्तार था ।

इसलिए भारतीय उद्योगों को संरक्षण नहीं मिला ।

उन्हें आधुनिक तकनीक उपलब्ध नहीं कराई गई ।

उन्हें पूँजी नहीं मिली ।

उन्हें समान प्रतिस्पर्धा का अवसर नहीं दिया गया ।

परिणामस्वरूप भारत का हस्तकरघा उद्योग धीरे-धीरे कमजोर होता गया ।

कार्ल मार्क्स और भारत का आर्थिक विनाश जर्मन विचारक कार्ल मार्क्स ने भी भारत पर ब्रिटिश शासन के प्रभाव का विश्लेषण करते हुए लिखा था कि ब्रिटिश उद्योगों ने भारतीय हस्तकरघा और कुटीर उद्योगों को गंभीर क्षति पहुँचाई । उन्होंने

उल्लेख किया कि इंग्लैंड के मशीन निर्मित वस्त्रों ने भारतीय उत्पादन व्यवस्था को कमजोर कर दिया और भारतीय समाज की आर्थिक संरचना में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किए। यद्यपि मार्क्स का दृष्टिकोण आर्थिक विश्लेषण पर आधारित था, फिर भी उनके लेखन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय उद्योगों पर औद्योगिक क्रांति का प्रभाव अत्यंत गहरा था।

पीड़ा, प्रताड़ना और करघों का मौन विद्रोह भारतीय इतिहास में एकलव्य की कथा त्याग, समर्पण और गुरु-भक्ति का अद्वितीय उदाहरण मानी जाती है। महाभारत के अनुसार, गुरु द्रोणाचार्य ने गुरु-दक्षिणा के रूप में एकलव्य का अंगूठा माँगा और उसने बिना किसी संकोच के अपना अंगूठा अर्पित कर दिया। यह प्रसंग भारतीय जनमानस में गहराई से अंकित है। भारतीय बुनकरों के इतिहास में भी एक ऐसी करुण स्मृति लोककथाओं, जनश्रुतियों और सामूहिक स्मृतियों में जीवित है, जो हमें औपनिवेशिक काल की पीड़ा और शोषण का एहसास कराती है।

सदियों तक भारतीय बुनकर अपने कौशल, धैर्य और अद्वितीय शिल्पकला के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध रहे। बंगाल की मलमल, बनारस का रेशम, गुजरात का पटोला, कच्छ की बुनावट और भारत के विभिन्न क्षेत्रों के हस्तनिर्मित वस्त्र विश्व बाजारों में सम्मान और गौरव का विषय थे। भारतीय बुनकर केवल वस्त्र निर्माता नहीं थे; वे भारत की सांस्कृतिक स्मृति, कलात्मक परंपरा और आर्थिक समृद्धि के संवाहक थे।

किन्तु औपनिवेशिक शासन के आगमन के साथ परिस्थितियाँ बदलने लगीं। बुनकरों को बाध्यकारी अनुबंधों में बाँधा गया, उनके श्रम का उचित मूल्य नहीं दिया गया, स्वतंत्र व्यापार के अवसर सीमित किए गए और अनेक क्षेत्रों में उन्हें आर्थिक तथा मानसिक प्रताड़ना का सामना करना पड़ा। कई स्थानों पर बुनकरों को दिन-रात कठोर परिश्रम करने के बावजूद सम्मानजनक आय प्राप्त नहीं होती थी। उनका श्रम बढ़ता गया, परन्तु उनके जीवन की कठिनाइयाँ भी बढ़ती गईं।

इसी संदर्भ में लोकमान्यताओं में एक अत्यंत मार्मिक कथा प्रचलित है कि कुछ बुनकरों ने अत्याचारों और जबरन श्रम से मुक्ति पाने के लिए अपने अंगूठों अथवा उँगलियों को स्वयं क्षति पहुँचाई। यद्यपि इस कथा के समर्थन में सर्वमान्य ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं और इतिहासकारों के बीच इस विषय पर मतभेद हैं, फिर भी यह जनस्मृति भारतीय बुनकरों की असहनीय पीड़ा का प्रतीक बन चुकी है।

इतिहास की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण यह प्रश्न नहीं है कि यह घटना कितनी व्यापक थी, बल्कि यह है कि ऐसी कथा जनमानस में जन्म ही क्यों ली। यह इस बात का संकेत है कि बुनकर समाज ने औपनिवेशिक शासन के दौरान गहन आर्थिक और सामाजिक कष्टों का अनुभव किया था।

निर्विवाद रूप से यह सत्य है कि लाखों बुनकरों की आजीविका प्रभावित हुई, असंख्य करघे मौन हो गए, अनेक परिवार निर्धनता, ऋणग्रस्तता और विस्थापन का शिकार बने तथा पीढ़ियों से चली आ रही कौशल परंपराएँ संकट में पड़ गईं।

यह केवल आर्थिक शोषण नहीं था; यह भारत की उस उत्पादन संस्कृति पर आघात था जिसने सदियों तक देश की समृद्धि, प्रतिष्ठा और वैश्विक पहचान को आकार दिया था।

“यदि एकलव्य का अंगूठा गुरु-दक्षिणा का प्रतीक था, तो भारतीय बुनकरों की घायल उँगलियाँ औपनिवेशिक शोषण की मूक गाथा बन गईं। उनके करघों की धीमी पड़ती टक-टक में केवल धागों का स्वर नहीं था, बल्कि संघर्ष, वेदना और आत्मसम्मान की प्रतिध्वनि भी सुनाई देती थी।”

भारतीय बुनकरों का इतिहास हमें स्मरण कराता है कि किसी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसके श्रमशील हाथों में निहित होती है। जब उन हाथों का सम्मान और स्वतंत्रता छिन जाती है, तब केवल एक समुदाय नहीं, बल्कि पूरी सभ्यता आहत होती है।

और फिर भी, विपरीत परिस्थितियों के बीच भारतीय बुनकरों ने अपनी कला, अपनी परंपरा और अपने स्वाभिमान को पूरी तरह समाप्त नहीं होने दिया। यही उनका मौन प्रतिरोध था, और यही उनकी सबसे बड़ी ऐतिहासिक विजय भी।

आर्थिक संकट से सामाजिक संकट तक भारतीय उद्योगों के पतन का प्रभाव केवल अर्थव्यवस्था तक सीमित नहीं रहा।

इसने समाज को भी प्रभावित किया।

लाखों परिवारों की आजीविका समाप्त होने लगी।

पारंपरिक कौशल संकट में पड़ गए।

पीढ़ियों से चली आ रही बुनाई परंपराएँ कमजोर होने लगीं।

गाँवों की आर्थिक संरचना बदलने लगी।

जहाँ कभी करघों की टक-टक सुनाई देती थी, वहाँ धीरे-धीरे सन्नाटा फैलने लगा।

यह केवल उद्योग का पतन नहीं था।

यह एक जीवन पद्धति का संकट था।

यह एक संस्कृति का संकट था।

यह एक सभ्यता के श्रम आधारित ढाँचे पर पड़ा आघात था।

फिर भी संघर्ष जीवित रहा किन्तु भारतीय बुनकरों की कहानी केवल पराजय की कहानी नहीं है।

उन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी अपने कौशल को जीवित रखा।

उन्होंने अपनी कला को समाप्त नहीं होने दिया।

उन्होंने अपनी परंपराओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाया।

यही कारण है कि आज भी भारत के अनेक क्षेत्रों में हस्तकरघा परंपरा जीवित है ।

वह केवल उद्योग नहीं है ।

वह इतिहास है ।

वह संस्कृति है ।

वह आत्मसम्मान है और वह उन लाखों बुनकरों की स्मृति है, जिन्होंने औद्योगिक क्रांति और औपनिवेशिक शोषण के कठिन दौर में भी अपने करघों को पूरी तरह मौन नहीं होने दिया । औद्योगिक क्रांति ने इंग्लैंड को समृद्ध बनाया, लेकिन भारत के लिए उसके परिणाम अत्यंत जटिल और पीड़ादायक रहे । स्पिनिंग जेनी, पावर लूम और ब्रिटिश मिल उद्योगों ने उत्पादन की नई दुनिया बनाई, किन्तु उसी प्रक्रिया ने भारतीय हस्तकरघा उद्योग को गहरा आघात पहुँचाया । भारतीय बाजारों पर ब्रिटिश वस्त्रों का कब्जा केवल व्यापारिक परिवर्तन नहीं था; वह आर्थिक उपनिवेशवाद की एक सुनियोजित प्रक्रिया थी । फिर भी भारतीय बुनकरों ने अपने श्रम, कौशल और आत्मसम्मान की परंपरा को जीवित रखा । इसी संघर्ष ने आगे चलकर स्वदेशी चेतना, खादी आंदोलन और आर्थिक आत्मनिर्भरता की उस विचारधारा को जन्म दिया, जिसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को नई दिशा प्रदान की और जहाँ करघों का संघर्ष धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना में बदलता दिखाई देता है ।

“भारतीय बुनकरों पर औपनिवेशिक प्रहार केवल आर्थिक नीति नहीं थी; यह भारत की आत्मनिर्भर उत्पादन व्यवस्था, उसकी सांस्कृतिक शक्ति और उसके श्रम आधारित समाज पर किया गया सुनियोजित आक्रमण था ।”

“भारत का करघा, केवल उद्योग नहीं,
एक सांस्कृतिक विश्वविद्यालय है ।”

नाथु सोसा

धागों में छिपा साहस,
करघों में जागता स्वाभिमान

प्रकरण 6

बुनकरों का मौन प्रतिरोध

जब शोषण असहनीय हो गया,
तब भी बुनकरों ने हथियार नहीं उठाए,
लेकिन उन्होंने अपने करघों को ही
प्रतिरोध का माध्यम बना लिया।
उन्होंने अन्यायपूर्ण नीतियों को
अस्वीकार किया, विदेशी वस्त्रों का
बहिष्कार किया, स्वदेशी और
स्वाभिमान की लौ जलाए रखी।
उनका यह मौन प्रतिरोध भारत के
स्वाधीनता संग्राम की
नींव बनने वाली
चेतना का
महत्वपूर्ण
स्तंभ बना।

मौन प्रतिरोध के रूप

- विदेशी कपड़ों का बहिष्कार
- जबरन अनुबंधों को अस्वीकार करना
- कम दाम पर माल बेचने से इन्कार
- स्वदेशी वस्त्र निर्माण को बढ़ावा देना
- परंपरागत बुनाई को जीवित रखना
- सामूहिक एकजुटता और सहयोग
- शोषण के विरुद्ध शांतिपूर्ण असहयोग

“ हमने तलवार नहीं उठाई,
हमने करघा नहीं छोड़ा।
हमने अन्याय नहीं माना,
हमने स्वाभिमान नहीं तोड़ा। ”

प्रतिरोध के प्रभाव



आत्मसम्मान और
एकता की भावना
का जागरण



शोषण के विरुद्ध
संगठित चेतना
का निर्माण



स्वदेशी आंदोलन
को शक्ति और
दिशा प्रदान



परंपरागत कला
और संस्कृति के
संरक्षण का संकल्प



स्वतंत्रता संग्राम
के लिए सामाजिक
आधार तैयार

उनका प्रतिरोध भले ही मौन था,
लेकिन उसकी गूंज ने साम्राज्य की नींव हिला दी।

६. बुनकरों का मौन प्रतिरोध

उत्पादन बंद करना, व्यापारिक असहयोग, स्थानीय विरोध और स्वाभिमान की रक्षा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास प्रायः युद्धों, क्रांतियों, राजनीतिक आंदोलनों और महान नेताओं के संघर्षों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। किन्तु इतिहास का एक दूसरा पक्ष भी है—वह पक्ष जो न तो तलवारों की चमक में दिखाई देता है और न ही रणभूमि की गर्जना में सुनाई देता है। यह उन लाखों श्रमशील लोगों का इतिहास है जिन्होंने बिना किसी औपचारिक संगठन, बिना किसी राजनीतिक मंच और बिना किसी प्रसिद्धि की आकांक्षा के अपने स्तर पर अन्याय का विरोध किया। भारतीय बुनकरों का संघर्ष इसी मौन प्रतिरोध का एक महत्वपूर्ण अध्याय था। अंग्रेजों की औपनिवेशिक नीतियों ने जब भारतीय हस्तकरघा उद्योग को व्यवस्थित रूप से कमजोर करना प्रारंभ किया, तब बुनकरों के पास न सेना थी, न राजनीतिक शक्ति और न ही प्रशासनिक अधिकार। फिर भी उन्होंने परिस्थितियों के सामने पूर्ण आत्मसमर्पण नहीं किया। उनका प्रतिरोध कभी खुले विद्रोह के रूप में दिखाई दिया, कभी असहयोग के रूप में, कभी उत्पादन रोक देने के रूप में और कभी अपने स्वाभिमान की रक्षा के संकल्प के रूप में। यह प्रतिरोध भले ही इतिहास के बड़े ग्रंथों में कम दिखाई देता हो, किन्तु भारतीय स्वतंत्रता चेतना की आधारभूमि में उसका स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

उत्पादन बंद करना मौन असहमति का स्वर जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय बुनकरों पर बाध्यकारी अनुबंध थोपने प्रारंभ किए, उन्हें अत्यंत कम मूल्य पर वस्त्र बेचने के लिए विवश किया और स्वतंत्र व्यापार पर नियंत्रण स्थापित किया, तब अनेक क्षेत्रों के बुनकरों ने अपने स्तर पर विरोध व्यक्त करना प्रारंभ किया। इस विरोध का सबसे प्रभावी रूप था—उत्पादन कम करना अथवा बंद कर देना। कई बुनकरों ने कंपनी के लिए उत्पादन करने से इंकार कर दिया। कुछ क्षेत्रों में उन्होंने करघों को अस्थायी रूप से बंद कर दिया। यह कोई संगठित राष्ट्रीय आंदोलन नहीं था, किन्तु यह उनके असंतोष और प्रतिरोध का स्पष्ट संकेत था। बुनकर समझ चुके थे कि उनके श्रम का उचित मूल्य नहीं मिल रहा है। वे यह भी समझ रहे थे कि कंपनी का उद्देश्य उनकी समृद्धि नहीं, बल्कि उनका आर्थिक नियंत्रण है। इसलिए अनेक स्थानों पर उन्होंने अपने उत्पादन को सीमित कर दिया। यह एक प्रकार का आर्थिक प्रतिरोध था। उनके पास हथियार नहीं थे, लेकिन उनके पास अपने श्रम को

रोक देने की शक्ति थी। उनके पास राजनीतिक अधिकार नहीं थे, लेकिन उनके पास अपने कौशल को नियंत्रित करने का अधिकार था और उन्होंने इसी अधिकार का उपयोग प्रतिरोध के माध्यम के रूप में किया।

व्यापारिक असहयोग औपनिवेशिक नियंत्रण के विरुद्ध संघर्ष, भारतीय बुनकरों का दूसरा महत्वपूर्ण प्रतिरोध था-व्यापारिक असहयोग। ईस्ट इंडिया कंपनी चाहती थी कि बुनकर केवल उसके लिए उत्पादन करें और उसके द्वारा निर्धारित मूल्य स्वीकार करें। किन्तु अनेक क्षेत्रों में बुनकरों ने वैकल्पिक व्यापारिक संबंध बनाए रखने का प्रयास किया। वे स्थानीय व्यापारियों, क्षेत्रीय मंडियों और पारंपरिक ग्राहकों से संपर्क बनाए रखते थे। कुछ बुनकरों ने कंपनी के एजेंटों से दूरी बनाने का प्रयास किया। कुछ ने अपने उत्पादों को गुप्त रूप से अन्य व्यापारियों तक पहुँचाया। कुछ क्षेत्रों में स्थानीय व्यापारिक नेटवर्क औपनिवेशिक नियंत्रण के विरुद्ध एक मौन प्रतिरोध का माध्यम बन गए। यद्यपि कंपनी की शक्ति अत्यंत व्यापक थी, फिर भी भारतीय समाज की पारंपरिक व्यापारिक संरचना पूरी तरह समाप्त नहीं हुई। बुनकरों का यह व्यापारिक असहयोग इस बात का प्रमाण था कि वे अपने आर्थिक अधिकारों को बचाने का प्रयास कर रहे थे। स्थानीय विरोध और जन असंतोष भारतीय बुनकरों का संघर्ष केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं था। अनेक क्षेत्रों में स्थानीय स्तर पर सामूहिक असंतोष भी दिखाई देता है। बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, गुजरात और दक्षिण भारत के कई हिस्सों में बुनकर समुदाय ने औपनिवेशिक नीतियों के विरुद्ध अपनी नाराज़गी व्यक्त की।

कुछ स्थानों पर उन्होंने कंपनी के गुमाशतों के व्यवहार का विरोध किया।

कुछ क्षेत्रों में स्थानीय अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतें की गईं।

कुछ स्थानों पर बुनकरों ने उत्पादन और आपूर्ति को सीमित कर दिया। यद्यपि इन आंदोलनों का स्वरूप क्षेत्रीय था और वे व्यापक राजनीतिक आंदोलनों के रूप में विकसित नहीं हो सके, फिर भी वे इस बात का प्रमाण थे कि भारतीय समाज औपनिवेशिक शोषण को मौन रूप से स्वीकार नहीं कर रहा था। इतिहासकारों का मत है कि उन्नीसवीं शताब्दी में विकसित होने वाली राष्ट्रीय चेतना की पृष्ठभूमि में ऐसे अनेक स्थानीय प्रतिरोधों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। स्वाभिमान की रक्षा संघर्ष का सबसे बड़ा आधार भारतीय बुनकरों का सबसे बड़ा प्रतिरोध केवल आर्थिक नहीं था; वह स्वाभिमान का प्रतिरोध था।

उनके लिए बुनाई केवल व्यवसाय नहीं थी ।

वह उनकी पहचान थी ।

वह उनकी परंपरा थी ।

वह उनके पूर्वजों की विरासत थी और वह उनके आत्मसम्मान का आधार थी । जब अंग्रेजी नीतियाँ उनके श्रम का मूल्य घटा रही थीं, तब भी अनेक बुनकरों ने अपनी कला को जीवित रखा । जब आर्थिक संकट बढ़ रहा था, तब भी उन्होंने अपने कौशल को छोड़ना स्वीकार नहीं किया । जब विदेशी कपड़े भारतीय बाजारों पर कब्जा कर रहे थे, तब भी उन्होंने अपनी परंपराओं को आगे बढ़ाने का प्रयास किया ।

यह केवल आर्थिक निर्णय नहीं था ।

यह सांस्कृतिक प्रतिरोध था ।

यह स्वाभिमान की रक्षा का संघर्ष था ।

उनके लिए करघा केवल आय का साधन नहीं था; वह उनकी अस्मिता का प्रतीक था । मौन संघर्ष की ऐतिहासिक महत्ता इतिहास प्रायः उन संघर्षों को अधिक महत्व देता है जो बड़े और प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं । किन्तु समाज को बदलने वाली अनेक शक्तियाँ ऐसी होती हैं जो शांत दिखाई देती हैं, परंतु उनका प्रभाव अत्यंत गहरा होता है ।

भारतीय बुनकरों का मौन प्रतिरोध भी ऐसी ही शक्ति था ।

उन्होंने न तो किसी बड़े राजनीतिक मंच से भाषण दिए ।

उन्होंने न विशाल सेनाएँ संगठित कीं ।

उन्होंने न सत्ता प्राप्त करने का प्रयास किया ।

फिर भी उनका संघर्ष महत्वपूर्ण था, क्योंकि वह आर्थिक न्याय, श्रम के सम्मान और आत्मसम्मान की रक्षा के लिए था । यही चेतना आगे चलकर स्वदेशी आंदोलन, खादी आंदोलन और आर्थिक आत्मनिर्भरता की विचारधारा का आधार बनी । जब महात्मा गांधी ने चरखे को स्वतंत्रता आंदोलन का प्रतीक बनाया, तब



उसके पीछे केवल आर्थिक विचार नहीं था । उसके पीछे सदियों से संघर्ष कर रहे भारतीय बुनकरों की परंपरा और उनका आत्मसम्मान भी था ।

करघे और प्रतिरोध की संस्कृति भारतीय बुनकरों ने यह सिद्ध किया कि प्रतिरोध केवल युद्धभूमि में नहीं होता ।

प्रतिरोध करघों पर भी होता है ।

प्रतिरोध श्रम में भी होता है ।

प्रतिरोध अपनी कला को जीवित रखने में भी होता है और प्रतिरोध अपनी पहचान को बचाए रखने में भी होता है । जब कोई समाज अपने अस्तित्व, अपनी संस्कृति और अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष करता है, तब उसका प्रत्येक श्रम प्रतिरोध का स्वर बन जाता है । भारतीय बुनकरों का जीवन इसी सत्य का उदाहरण है ।

भारतीय बुनकरों का मौन प्रतिरोध स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास का एक ऐसा अध्याय है, जिसे लंबे समय तक अपेक्षित महत्व नहीं मिला । किन्तु यदि हम भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की जड़ों को समझना चाहते हैं, तो हमें उन लाखों बुनकरों को भी याद करना होगा जिन्होंने बिना किसी प्रसिद्धि के अपने श्रम और आत्मसम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष किया ।

उन्होंने उत्पादन रोककर विरोध किया ।

उन्होंने व्यापारिक असहयोग किया ।

उन्होंने स्थानीय स्तर पर अन्याय का प्रतिरोध किया और सबसे महत्वपूर्ण बात—उन्होंने अपने स्वाभिमान को जीवित रखा । उनकी यह चेतना हमें यह सिखाती है कि स्वतंत्रता केवल राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने का नाम नहीं है; स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ है । अपने श्रम, अपनी पहचान और अपने सम्मान की रक्षा करना । भारतीय बुनकरों ने केवल वस्त्र नहीं बुने; उन्होंने प्रतिरोध बुना, स्वाभिमान बुना और आने वाली पीढ़ियों के लिए आत्मसम्मान की एक अमर परंपरा भी बुनी । यही मौन प्रतिरोध आगे चलकर स्वदेशी चेतना और राष्ट्रीय जागरण का आधार बना ।

सामाजिक शोषण

- जातिगत भेदभाव और अपमान
- ऊँच-नीच की भावना
- सामाजिक बहिष्कार
- मंदिरों, कुओं और सार्वजनिक स्थानों पर भेदभाव
- शिक्षा से वंचित रखा गया

प्रकरण 7

सामाजिक और आर्थिक दोहरा शोषण

आर्थिक शोषण

- कच्चे माल पर महंगे दाम
- तैयार वस्त्र पर कम दाम
- जबरन तय किये गए भाव
- बिचौलियों और दलालों का शोषण
- भारी कर और लगान का बोझ
- कर्ज़ के जाल में फ़साना

भारतीय बुनकरों का शोषण केवल आर्थिक नहीं था, बल्कि सामाजिक स्तर पर भी उन्हें अपमान, भेदभाव और उत्पीड़न का सामना करना पड़ा।

अंग्रेजी शासन और उनके समर्थक व्यापारियों ने मिलकर बुनकरों को समाज में नीचे दिखाया और आर्थिक रूप से निर्धन बनाकर उनकी पीढ़ियों को प्रभावित करता रहा।

“उनके करघे से निकला प्रत्येक धागा हमारे वस्त्र बनाता था, लेकिन उनके हिस्से में अपमान, भूख और आँसू ही आए।”

परिणाम

- गरीबी और भुखमरी
- अशिक्षा और बीमारी
- रोजगार के साधनों का अभाव
- पीढ़ियों तक पिछड़ापन

दोहरा शोषण - दोहरी मार

सामाजिक अपमान



आत्मसम्मान को ठेस, समाज में हीन भावना

आर्थिक निर्धनता



उचित मूल्य न मिलना, कर्ज़ और करों के बोझ से दरिद्रता

शिक्षा से वंचित



शिक्षा से दूर रखकर अज्ञानता और पिछड़ापन बनाए रखा गया

स्वास्थ्य संकट



गरीबी और गंदगी के कारण बीमारियों और कम आयु

रोजगार का संकट



उद्योग के नष्ट होने से रोजगार छीना और भविष्य अंधकारमय हुआ

पीढ़ियों पर प्रभाव



दोहरे शोषण का असर पीढ़ियों तक जारी रहा

यह केवल आर्थिक नहीं, मानवीय और सामाजिक अन्याय का इतिहास है, जिसे हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।

७. सामाजिक और आर्थिक दोहरा शोषण

जा

तिगत भेदभाव, आर्थिक उत्पीड़न और कारीगर वर्ग की त्रासदी भारतीय बुनकरों के संघर्ष का इतिहास केवल औपनिवेशिक शोषण का इतिहास नहीं है। यदि हम उनके जीवन की वास्तविक परिस्थितियों को समझना चाहते हैं, तो हमें उस सामाजिक संरचना को भी समझना होगा जिसमें वे जीवन व्यतीत कर रहे थे। ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय बुनकरों को केवल विदेशी सत्ता के आर्थिक अत्याचारों का सामना नहीं करना पड़ा, बल्कि वे अपने ही समाज में व्याप्त जातिगत असमानता, सामाजिक उपेक्षा और सम्मानहीनता के भी शिकार रहे। इस प्रकार भारतीय बुनकरों का संघर्ष दोहरा था। एक ओर औपनिवेशिक शासन उनकी आर्थिक शक्ति को कमजोर कर रहा था। दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था उन्हें बराबरी और सम्मान से वंचित कर रही थी। यही कारण है कि भारतीय बुनकरों की पीड़ा को केवल आर्थिक दृष्टि से समझना पर्याप्त नहीं है। उनके संघर्ष का एक महत्वपूर्ण पक्ष सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा से भी जुड़ा हुआ है।

भारतीय समाज और श्रम की विडंबना भारत की सभ्यता का निर्माण जिन लोगों ने किया, उनमें किसानों, कारीगरों, शिल्पकारों और बुनकरों का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने समाज को वस्त्र, औजार, घर, कृषि उपकरण और जीवनोपयोगी वस्तुएँ प्रदान कीं। उन्होंने अपनी कला और श्रम से समाज को समृद्ध बनाया। किन्तु विडंबना यह रही कि जिन हाथों ने समाज की आवश्यकताओं को पूरा किया, उन्हें हमेशा समान सम्मान नहीं मिला। भारतीय समाज के अनेक क्षेत्रों में श्रम आधारित समुदायों को सामाजिक रूप से निम्न समझा गया। उत्पादन करने वाले वर्गों को सम्मान की दृष्टि से देखने के बजाय अनेक बार उन्हें सामाजिक सीढ़ी के निचले स्तर पर रखा गया। बुनकर समुदाय भी इस स्थिति से अछूता नहीं रहा। वे समाज के लिए आवश्यक थे, किन्तु सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से उन्हें वह स्थान

नहीं मिला जिसके वे अधिकारी थे। जातिगत भेदभाव और बुनकर समाज भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बुनाई का कार्य अनेक समुदायों द्वारा किया जाता था। इनमें जुलाहा, मेघवाल, कोली, महेश्वरी, पटवा, देवांग, सालवी, अणजारा तथा अन्य अनेक समुदाय शामिल थे। क्षेत्र विशेष के अनुसार उनकी सामाजिक स्थिति भिन्न हो सकती थी, किन्तु व्यापक स्तर पर देखा जाए तो अनेक बुनकर समुदाय जातिगत भेदभाव और सामाजिक उपेक्षा का सामना कर रहे थे। उनकी आर्थिक उपयोगिता तो स्वीकार की जाती थी, लेकिन सामाजिक समानता नहीं। उनके श्रम का उपयोग तो किया जाता था, लेकिन उनके सम्मान को पर्याप्त महत्व नहीं दिया जाता था।

यही सामाजिक विरोधाभास भारतीय समाज की एक बड़ी समस्या थी।

एक ओर समाज उनके बनाए वस्त्रों का उपयोग करता था।

दूसरी ओर वही समाज कई बार उन्हें समान मानवीय गरिमा प्रदान करने में संकोच करता था।

आर्थिक शोषण और सामाजिक उपेक्षा का गठबंधन जब ब्रिटिश शासन ने भारतीय बुनकरों पर आर्थिक नियंत्रण स्थापित करना प्रारंभ किया, तब उनकी स्थिति और अधिक कठिन हो गई। यदि कोई समुदाय आर्थिक रूप से मजबूत हो, तो वह अन्य प्रकार के अत्याचारों का सामना अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से कर सकता है। लेकिन भारतीय बुनकरों की स्थिति अलग थी।

वे पहले से ही सामाजिक चुनौतियों का सामना कर रहे थे।

अब उनके सामने आर्थिक संकट भी खड़ा हो गया।

कम मूल्य पर वस्त्र खरीदना, बाध्यकारी अनुबंध, स्वतंत्र व्यापार पर प्रतिबंध और विदेशी वस्त्रों की प्रतिस्पर्धा ने उनकी आर्थिक स्थिति को कमजोर कर दिया।

परिणामस्वरूप वे दोहरी मार झेलने लगे, सामाजिक असमानता आर्थिक शोषण यह दोहरा शोषण उनके जीवन को और अधिक कठिन बनाता गया ।

कारीगर वर्ग की बदलती स्थिति अठारहवीं शताब्दी के पूर्व भारत का कारीगर वर्ग अनेक क्षेत्रों में सम्मानजनक जीवन व्यतीत करता था । वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, हस्तशिल्प और अन्य कुटीर उद्योगों के कारण उन्हें नियमित आय प्राप्त होती थी । लेकिन औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों ने इस संतुलन को तोड़ दिया ।

जब उत्पादन घटने लगा और बाजार सिकुड़ने लगे, तब कारीगर वर्ग की आर्थिक स्थिति कमजोर होने लगी ।

कई बुनकर परिवारों को अपना पुष्टतैनी व्यवसाय छोड़ना पड़ा । जो समुदाय कभी उत्पादन और व्यापार का महत्वपूर्ण हिस्सा था, वह धीरे-धीरे आर्थिक असुरक्षा का शिकार बनने लगा । गरीबी का विस्तार और कौशल का संकट आर्थिक संकट का एक गंभीर प्रभाव यह हुआ कि अनेक परिवार अपने बच्चों को पारंपरिक कौशल सिखाने में असमर्थ होने लगे । जब आजीविका ही संकट में हो, तब कला और परंपरा को सुरक्षित रखना कठिन हो जाता है । कई स्थानों पर युवा पीढ़ी ने बुनाई से दूरी बनानी शुरू कर दी ।

कुछ ने मजबूरी में अन्य व्यवसाय अपनाए ।

कुछ ने मजदूरी को प्राथमिकता दी ।

परिणामस्वरूप सदियों से संचित कौशल धीरे-धीरे संकट में पड़ने लगा ।

यह केवल आर्थिक हानि नहीं थी ।

यह सांस्कृतिक हानि भी थी ।



क्योंकि प्रत्येक करघे के साथ केवल उत्पादन नहीं, बल्कि पीढ़ियों का ज्ञान भी जुड़ा हुआ था ।

बुनकर समाज और आत्मसम्मान की चेतना

इन कठिन परिस्थितियों के बावजूद भारतीय बुनकरों ने अपनी पहचान को पूरी तरह समाप्त नहीं होने दिया ।

उन्होंने अपनी परंपराओं को जीवित रखा ।

उन्होंने अपने कौशल को आगे बढ़ाया ।

उन्होंने अपने श्रम को सम्मान का विषय माना ।

यही आत्मसम्मान उनकी सबसे बड़ी शक्ति था ।

उनके पास राजनीतिक सत्ता नहीं थी ।

उनके पास आर्थिक संसाधन सीमित थे ।

लेकिन उनके पास श्रम की गरिमा थी ।

और यही गरिमा उन्हें संघर्ष करने की शक्ति प्रदान करती रही ।

डॉ. भीमराव आंबेडकर और श्रम की गरिमा भारतीय समाज में श्रम को सम्मान दिलाने की आवश्यकता पर डॉ. भीमराव आंबेडकर ने विशेष बल दिया था । उनका मानना था कि किसी भी समाज की प्रगति तभी संभव है जब उत्पादन करने वाले वर्गों को सम्मान, अवसर और समान अधिकार प्राप्त हों । उन्होंने बार-बार इस बात पर बल दिया कि सामाजिक न्याय के बिना आर्थिक न्याय संभव नहीं है । भारतीय बुनकरों का इतिहास इस सत्य को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है । जब तक सामाजिक समानता नहीं होगी, तब तक श्रम का उचित सम्मान भी संभव नहीं होगा ।

और जब तक श्रम का सम्मान नहीं होगा, तब तक समाज की वास्तविक प्रगति अधूरी रहेगी। इतिहास की पुनर्व्याख्या की आवश्यकता भारतीय इतिहास को लंबे समय तक मुख्यतः राजाओं, युद्धों और राजनीतिक घटनाओं के माध्यम से देखा गया। परिणामस्वरूप श्रमिकों, किसानों, कारीगरों और बुनकरों के योगदान को अपेक्षित स्थान नहीं मिल पाया।

आज आवश्यकता है कि इतिहास को व्यापक दृष्टि से देखा जाए।

हमें उन लोगों की कहानियाँ भी सामने लानी होंगी जिन्होंने बिना किसी सत्ता के, बिना किसी पद के और बिना किसी प्रसिद्धि के इस राष्ट्र का निर्माण किया।

भारतीय बुनकरों का इतिहास केवल आर्थिक इतिहास नहीं है।

वह सामाजिक न्याय का इतिहास भी है।

वह सम्मान की खोज का इतिहास भी है।

वह श्रम की गरिमा का इतिहास भी है।

भारतीय बुनकरों का संघर्ष केवल विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष नहीं था।

वह सामाजिक असमानता के विरुद्ध संघर्ष भी था।

वह आर्थिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष भी था।

वह मानवीय गरिमा की रक्षा का संघर्ष भी था।

उन्होंने दोहरे अत्याचारों का सामना किया, एक ओर औपनिवेशिक सत्ता का आर्थिक दमन, और दूसरी ओर सामाजिक भेदभाव की पीड़ा। फिर भी उन्होंने अपने श्रम, अपनी कला और अपने आत्मसम्मान को जीवित रखा।



यही कारण है कि भारतीय बुनकरों की गाथा केवल वस्त्र उद्योग की कहानी नहीं है; वह मानव गरिमा, सामाजिक न्याय और श्रम के सम्मान की एक प्रेरणादायी यात्रा है। जिन हाथों ने भारत को वस्त्र दिए, उन्हीं हाथों ने संघर्ष का इतिहास भी लिखा। उन्होंने केवल करघे नहीं चलाए, बल्कि विपरीत परिस्थितियों में भी आत्मसम्मान की लौ को जलाए रखा। इसी चेतना ने आगे चलकर सामाजिक जागरण, स्वदेशी भावना और स्वतंत्रता आंदोलन की व्यापक जनचेतना को मजबूत आधार प्रदान किया।

"जहाँ धागों का सम्मान होता है,
वहाँ संस्कृति कभी दरिद्र नहीं होती।"

"बुनकर की उँगलियाँ,
इतिहास की सबसे शांत लेकिन सबसे प्रभावशाली लेखनी हैं।"

"करघे पर बैठा कारीगर,
अपने राष्ट्र की अस्मिता का मौन प्रहरी होता है।"

"जिस राष्ट्र ने अपने बुनकरों को भुला दिया,
उसने अपनी जड़ों को कमजोर कर दिया।"

नाथु सोसा

प्रकरण 8

स्वतंत्रता चेतना की आधारभूमि

स्वदेशी भावना, स्थानीय उत्पादन और आत्मनिर्भरता का उदय

आर्थिक शोषण और सांस्कृतिक दमन के विरुद्ध भारतीय समाज के भीतर स्वदेशी भावना की चेतना जागृत हुई। यह चेतना आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन की मजबूत नींव बनी और स्वतंत्रता संग्राम को जन-आधार प्रदान किया।



स्वदेशी अपनाओ देश को बचाओ

1. स्वदेशी भावना का उदय

- विदेशी शोषण के विरुद्ध भारतीय मन में स्वदेशी भावना का विकास हुआ।
- स्थानीय उत्पादन और देशी वस्तुओं के प्रयोग को प्रोत्साहन मिला।
- स्वदेशी केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रतीक बना।

स्वदेशी
अपनाओ

2. स्थानीय उत्पादन को प्रोत्साहन

- करघा, चरखा, हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों को पुनर्जीवित करने का प्रयास हुआ।
- बुनकरों और कारीगरों के पारंपरिक कौशल को नई पहचान मिली।
- स्थानीय संसाधनों से स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति का विचार मजबूत हुआ।



3. विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार

- विदेशी कपड़ों और वस्तुओं के बहिष्कार का आंदोलन प्रारंभ हुआ।
- अंग्रेजी मिलों के बने कपड़ों की होती जलाई गई, स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग को अपनाया गया।
- यह आंदोलन गाँव - गाँव और नगर - नगर फैल गया।



4. स्वदेशी आंदोलन के प्रारंभिक चरण

- 1905 के बंग - भंग के विरोध में स्वदेशी आंदोलन ने व्यापक रूप लिया।
- 'वंदे मातरम्' और 'स्वदेशी' नारों से जनमानस में उत्साह जागा।
- विद्यार्थियों, महिलाओं, किसानों, मजदूरों और बुनकरों ने सक्रिय भाग लिया।



5. खादी और चरखा-आत्मनिर्भरता का प्रतीक

- चरखा और खादी स्वदेशी आंदोलन की आत्मा बने।
- यह केवल कपड़ा नहीं, बल्कि स्वावलंबन, एकता और त्याग का प्रतीक था।
- आगे चलकर यह महात्मा गांधी के नेतृत्व में जन-आंदोलन का आधार बना।



6. राष्ट्रीय चेतना का विस्तार

- स्वदेशी भावना ने राजनीतिक स्वतंत्रता की चेतना को जन्म दिया।
- आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता अधूरी है - यह विचार जन-जन तक पहुंचा।
- उपनिषद् के राष्ट्रीय और राष्ट्रीय से पूर्ण स्वाधीनता की ओर यात्रा प्रारंभ हुई।



स्वदेशी से मूल सिद्धांत



स्वदेशी उत्पादन



विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार



सामूहिक सहभागिता और एकता



आत्मनिर्भरता और आर्थिक स्वतंत्रता



राष्ट्रीय स्वाभिमान और सांस्कृतिक पुनर्जागरण

"जब तक भारत का प्रत्येक व्यक्ति स्वदेशी को नहीं अपनाएगा, तब तक भारत स्वतंत्र नहीं हो सकता"

- स्वदेशी केवल वस्त्र नहीं, यह विचार है, यह स्वाभिमान है, यह स्वतंत्रता का आधारभूमि है।



बुनकरों की भूमिका

- बुनकरों ने स्वदेशी आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाई।
- उन्होंने करघों को पुनः चलाया और स्वदेशी वस्त्रों का उत्पादन बढ़ाया।
- उन्होंने न केवल आर्थिक प्रतिरोध किया, बल्कि राष्ट्रीय जागरण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।
- उनका श्रम, कौशल और त्याग स्वतंत्रता चेतना को सुदृढ़ता प्रदान करता है।



स्वदेशी से स्वराज की ओर - यही था भारतीय स्वतंत्रता चेतना का वास्तविक उदय

८. स्वतंत्रता चेतना की आधारभूमि

स्वदेशी भावना, स्थानीय उत्पादन और आत्मनिर्भरता का उदय भारतीय बुनकरों के संघर्ष का इतिहास केवल आर्थिक शोषण, औपनिवेशिक अत्याचार और सामाजिक उपेक्षा का इतिहास नहीं है। यह उस चेतना का भी इतिहास है जिसने आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को वैचारिक आधार प्रदान किया। जब अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों ने भारतीय उद्योगों को कमजोर करना प्रारंभ किया, तब भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में धीरे-धीरे यह समझ विकसित होने लगी कि राजनीतिक स्वतंत्रता और आर्थिक स्वतंत्रता एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। यदि किसी राष्ट्र की उत्पादन शक्ति नष्ट हो जाए, यदि उसके कारीगर बेरोजगार हो जाएँ, यदि उसके उद्योग विदेशी नियंत्रण में चले जाएँ और यदि उसके लोग विदेशी वस्तुओं पर निर्भर हो जाएँ, तो केवल राजनीतिक शासन परिवर्तन से वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती। यही विचार आगे चलकर स्वदेशी चेतना, स्थानीय उत्पादन और आत्मनिर्भरता के रूप में विकसित हुआ। भारतीय बुनकर इस चेतना के सबसे महत्वपूर्ण वाहकों में से एक थे।

आर्थिक शोषण से राष्ट्रीय चेतना तक अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान जब भारतीय बुनकरों ने अपनी आर्थिक स्थिति को बिगड़ते हुए देखा, तब उन्हें यह अनुभव होने लगा कि यह केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं है।

यह पूरे राष्ट्र की समस्या है।

जब विदेशी वस्त्र भारतीय बाजारों पर कब्जा कर रहे थे, तब केवल बुनकर ही प्रभावित नहीं हो रहे थे।

किसान प्रभावित हो रहे थे।

कारीगर प्रभावित हो रहे थे।

व्यापारी प्रभावित हो रहे थे।

और अंततः पूरा समाज प्रभावित हो रहा था।



भारतीय समाज धीरे-धीरे यह समझने लगा कि विदेशी शासन केवल राजनीतिक सत्ता का प्रश्न नहीं है; वह आर्थिक नियंत्रण का भी प्रश्न है ।

यहीं से स्वतंत्रता चेतना की वह आधारभूमि तैयार होने लगी, जिसने आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन को दिशा प्रदान की ।

स्वदेशी भावना का उदय

“स्वदेशी” शब्द का अर्थ केवल देश में निर्मित वस्तुओं का उपयोग करना नहीं है ।

स्वदेशी एक विचार है ।

स्वदेशी एक चेतना है ।

स्वदेशी आत्मसम्मान का प्रतीक है ।

स्वदेशी यह विश्वास है कि किसी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसके अपने श्रम, उसके अपने संसाधनों और उसकी अपनी उत्पादन क्षमता में निहित होती है । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जैसे-जैसे भारतीय समाज में राजनीतिक जागृति बढ़ी, वैसे-वैसे स्वदेशी भावना भी मजबूत होती गई । लोग यह समझने लगे कि विदेशी वस्त्रों का उपयोग केवल व्यापारिक व्यवहार नहीं है; वह अप्रत्यक्ष रूप से उस व्यवस्था को मजबूत करना है जिसने भारतीय उद्योगों को कमजोर किया है ।

भारतीय बुनकरों के लिए स्वदेशी कोई नया विचार नहीं था ।

वे सदियों से स्थानीय उत्पादन और स्थानीय अर्थव्यवस्था के आधार रहे थे ।

इसलिए जब स्वदेशी आंदोलन का विचार सामने आया, तब उसके मूल में भारतीय बुनकरों का अनुभव और उनका संघर्ष पहले से ही उपस्थित था ।

स्थानीय उत्पादन भारत की आर्थिक शक्ति की पारंपरिक अर्थव्यवस्था का आधार स्थानीय उत्पादन था ।

गाँव केवल कृषि केंद्र नहीं थे ।

वे उत्पादन केंद्र भी थे ।

वहाँ किसान अन्न उगाते थे ।

कारीगर औजार बनाते थे ।

कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाते थे ।

लोहार कृषि उपकरण तैयार करते थे ।

और बुनकर वस्त्रों का निर्माण करते थे ।

इस प्रकार ग्रामीण भारत एक आत्मनिर्भर आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करता था ।

अंग्रेजों की औपनिवेशिक नीतियों ने इसी व्यवस्था को सबसे अधिक नुकसान पहुँचाया ।

जब विदेशी वस्त्र भारतीय बाजारों में आने लगे, तब स्थानीय उत्पादन प्रभावित होने लगा ।

करघों की गति धीमी पड़ने लगी ।

स्थानीय बाजार कमजोर होने लगे ।

और आर्थिक निर्भरता बढ़ने लगी ।

किन्तु इसके बावजूद अनेक क्षेत्रों में स्थानीय उत्पादन की परंपरा जीवित रही ।

यही परंपरा आगे चलकर स्वदेशी आंदोलन की शक्ति बनी ।

बुनकर और स्वदेशी आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि

१९०५ के बंग-भंग आंदोलन के दौरान स्वदेशी आंदोलन ने व्यापक स्वरूप प्राप्त किया, किन्तु उसकी वैचारिक जड़ें उससे बहुत पहले तैयार हो चुकी थीं ।



भारतीय बुनकरों, कारीगरों और श्रमिकों का संघर्ष इस चेतना की आधारभूमि था ।

जब किसी बुनकर ने विदेशी नियंत्रण के विरुद्ध अपने करघे को जीवित रखा, तब वह स्वदेशी चेतना को जीवित रख रहा था ।

जब किसी परिवार ने स्थानीय उत्पादन को अपनाया, तब वह स्वदेशी विचार को मजबूत कर रहा था ।

जब किसी कारीगर ने अपने कौशल को बचाए रखा, तब वह आर्थिक स्वतंत्रता की रक्षा कर रहा था ।

इस प्रकार स्वदेशी आंदोलन केवल राजनीतिक नेताओं का आंदोलन नहीं था ।

वह भारतीय श्रमशील समाज की सामूहिक चेतना का परिणाम था ।

आत्मनिर्भरता स्वतंत्रता का आर्थिक आधार भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का एक महत्वपूर्ण संदेश था-आत्मनिर्भरता ।

आत्मनिर्भरता का अर्थ केवल आर्थिक उत्पादन नहीं है ।

आत्मनिर्भरता का अर्थ है,

अपने संसाधनों पर विश्वास ।

अपने श्रम का सम्मान ।

अपने उद्योगों का संरक्षण ।

और अपनी उत्पादन क्षमता का विकास ।

भारतीय बुनकरों का जीवन इसी आत्मनिर्भरता का उदाहरण था ।

वे स्थानीय संसाधनों का उपयोग करते थे ।

वे अपने कौशल के आधार पर उत्पादन करते थे ।

वे अपने समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करते थे । और वे स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाते थे ।

यही कारण है कि आत्मनिर्भरता का विचार भारतीय बुनकरों के जीवन से गहराई से जुड़ा हुआ था । चरखा राष्ट्रीय चेतना का केंद्र अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी का इतिहास है, फिर भी यह उल्लेख आवश्यक है कि आगे चलकर महात्मा गांधी ने चरखे को राष्ट्रीय आंदोलन का प्रतीक बनाया ।

वह स्वदेशी का प्रतीक था ।

और वह आत्मनिर्भर भारत के स्वप्न का प्रतीक था ।

चरखे को राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में स्वीकार किए जाने के पीछे सदियों से संघर्ष कर रहे भारतीय बुनकरों की परंपरा और उनका योगदान भी निहित था । बुनकरों की चेतना और राष्ट्रीय पुनर्जागरण भारतीय बुनकरों का संघर्ष हमें यह सिखाता है कि राष्ट्रीय पुनर्जागरण केवल राजनीतिक आंदोलनों से नहीं आता । वह समाज की चेतना से आता है ।

वह श्रम के सम्मान से आता है ।

वह आत्मनिर्भरता के विश्वास से आता है । और वह इस संकल्प से आता है कि कोई भी राष्ट्र अपनी उत्पादन शक्ति को कमजोर नहीं होने देगा । भारतीय बुनकरों ने अपने जीवन और संघर्ष से यही संदेश दिया । उनकी चेतना ने भारतीय समाज को यह समझाया कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता अधूरी है । भारतीय स्वतंत्रता चेतना की आधारभूमि केवल राजनीतिक विचारधाराओं में नहीं थी । वह किसानों के संघर्षों में थी, मजदूरों के श्रम में थी, कारीगरों की सृजनशीलता में थी और बुनकरों के करघों में भी थी ।

स्वदेशी भावना ने भारतीयों को अपने उद्योगों पर विश्वास करना सिखाया ।

स्थानीय उत्पादन ने आत्मनिर्भरता का मार्ग दिखाया ।



और आत्मनिर्भरता ने स्वतंत्रता के विचार को आर्थिक आधार प्रदान किया ।

भारतीय बुनकरों का योगदान इसी कारण विशेष महत्व रखता है ।

उन्होंने केवल वस्त्र नहीं बनाए ।

उन्होंने आत्मनिर्भरता का संदेश दिया ।

उन्होंने स्वदेशी चेतना को जीवित रखा ।

उन्होंने श्रम के सम्मान की रक्षा की । और उन्होंने आने वाली पीढ़ियों को यह सिखाया कि किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसके अपने हाथों में होती है ।

जब किसी राष्ट्र के करघे चलते हैं, तब केवल वस्त्र नहीं बनते आत्मनिर्भरता जन्म लेती है, स्वाभिमान मजबूत होता है और स्वतंत्रता की चेतना जागृत होती है । यही चेतना आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की सबसे बड़ी शक्ति बनी और स्वतंत्र भारत के स्वप्न को साकार करने में सहायक सिद्ध हुई ।

"भारतीय वस्त्रों में केवल रंग नहीं,
संघर्ष, श्रम और स्वाभिमान भी बुना होता है ।"

"बुनाई एक कला नहीं,
पीढ़ियों की साधना है ।"

"धागों की मजबूती ही,
भारत की सांस्कृतिक एकता की मजबूती है ।"

नाथु सोसा

करघों की टक -टक - संघर्ष की आवाज़

- करघों की टक -टक में छिपा था पीड़ा का संगीत।
- हर धागा था श्रम, हर बुनावट थी स्वाभिमान की कहानी।
- अन्याय और शोषण के विरुद्ध मन में उठने लगे प्रश्न।

प्रकरण 9

करघों की टक-टक से स्वतंत्रता की चेतना तक

चेतना से संगठन तक

- बुनकर समाज ने अन्याय के विरुद्ध संगठित होना शुरू किया।
- सभाएं, बैठकों और विचार-विमर्श से जागी नहीं चेतना।
- शिक्षा, स्वदेशी और स्वाभिमान को बनाया अपना हथियार।

बुनकरों के करघों की टक -टक केवल धागों को नहीं बुनती थी, वह स्वाभिमान, अस्मिता और स्वतंत्रता की चेतना भी बुनती थी। अपने श्रम, पीड़ा और संघर्ष के बीच बुनकर समाज ने धीरे -धीरे अन्याय को पहचाना, संगठित हुआ, आवाज़ उठाई और राष्ट्र की स्वतंत्रता के महान आंदोलन से जुड़ गया। करघों की यह लय अंततः " वंदे मातरम् " और 'भारत माता की जय' के उद्घोष में बदल गई।

" करघों की टक -टक में छिपा था एक सवाल कब तक सहें अन्याय ? कब आएगा स्वराज ? "

स्वदेशी और बहिष्कार का मार्ग

- विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया।
- स्वदेशी वस्त्रों को अपनाया और बढ़ावा दिया।
- अपने श्रम से स्वावलंबन और स्वाभिमान की भावना को मजबूत किया।

स्वदेशी
हमारा अधिकार

वंदे
मातरम्

भारत माता
की जय

स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी

- बुनकरों ने सत्याग्रह, बहिष्कार, जुलूसों और सभाओं में बढ़-चढ़कर भाग लिया।
- अनेक बुनकरों ने जेल यात्राएं की, बलिदान दिया।
- उनके करघे बंध नहीं हुए, पर उनकी दिशा बदल गई - अब वह राष्ट्र के लिए बुन रहे थे।

इंकाबाब नहीं,
स्वराज चाहिए!

" टक -टक की लय से उठी आवाज़, बन गई आजादी का अंदाज़ । "

करघों की टक -टक से स्वतंत्रता की चेतना तक की यात्रा

श्रम और शोषण



करघों पर कड़ी मेहनत, पर मिलता केवल शोषण।

चेतना का उदय



अन्याय को समझा, प्रश्न उठे, सोच बदली।

संगठन और संवाद



बैठकों, सभाओं और विचार-विमर्श से जुड़ाव।

स्वदेशी और स्वावलंबन



देशी वस्त्र अपनाए, स्वावलंबन का संकल्प लिया।

आंदोलन में भागीदारी



सत्याग्रह, बहिष्कार, जुलूसों में सक्रिय भूमिका निभाई।

स्वतंत्रता की चेतना



राष्ट्रभक्ति, स्वाभिमान और स्वतंत्रता के संकल्प तक पहुँचे।

करघों की टक -टक ने जगाई जो चेतना, उसी ने भारत को दिलाई स्वतंत्रता की साधना

९. करघों की टक-टक से स्वतंत्रता की चेतना तक

भा

रतीय बुनकरों का इतिहास केवल वस्त्र निर्माण का इतिहास नहीं है। यह उस श्रमशील समाज की गाथा है जिसने अपने हाथों से भारत की आर्थिक समृद्धि, सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक संरचना को आकार दिया। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी का कालखंड भारतीय बुनकरों के लिए अत्यंत चुनौतीपूर्ण रहा। एक ओर औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियाँ उनके अस्तित्व को कमजोर कर रही थीं, तो दूसरी ओर सामाजिक उपेक्षा और असमानता की पीड़ा भी उनके जीवन का हिस्सा बनी हुई थी। फिर भी भारतीय बुनकरों ने हार नहीं मानी। उन्होंने अपने करघों को केवल आजीविका का साधन नहीं माना; उन्होंने उन्हें अपने स्वाभिमान, अपनी संस्कृति और अपनी पहचान का प्रतीक बना दिया। जब अंग्रेजी सत्ता भारतीय उद्योगों को नष्ट करने का प्रयास कर रही थी, तब लाखों बुनकर अपने श्रम और कौशल के माध्यम से मौन प्रतिरोध कर रहे थे। उनका संघर्ष किसी रणभूमि में नहीं लड़ा गया, लेकिन उसका महत्व किसी युद्ध से कम नहीं था।

भारत के करघों पर केवल धागे नहीं चलते थे।

उनमें पीढ़ियों का अनुभव चलता था।

उनमें श्रम की गरिमा चलती थी।

उनमें संस्कृति की स्मृतियाँ चलती थीं और उनमें स्वतंत्रता की वह चेतना भी चलती थी, जिसने आगे चलकर स्वदेशी आंदोलन, खादी आंदोलन और राष्ट्रीय जागरण को प्रेरणा दी। अंग्रेजों ने भारतीय उद्योगों को कमजोर किया, बाजारों पर नियंत्रण स्थापित किया, बुनकरों के श्रम का शोषण किया और विदेशी वस्त्रों से भारतीय बाजारों को भर दिया। लेकिन वे भारतीय बुनकरों की आत्मा को पराजित नहीं कर सके। वे उनके करघों को कमजोर कर सके, परन्तु उनकी चेतना को समाप्त नहीं कर सके। वे उनके व्यापार को सीमित कर सके, परन्तु उनके आत्मसम्मान को नहीं मिटा सके।

भारतीय बुनकरों का संघर्ष हमें यह सिखाता है कि स्वतंत्रता केवल राजनीतिक सत्ता परिवर्तन का नाम नहीं है। स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ है अपने श्रम का सम्मान, अपनी संस्कृति की रक्षा, अपनी आर्थिक शक्ति का संरक्षण और अपने आत्मसम्मान को

जीवित रखना। यदि भारत की स्वतंत्रता का इतिहास लिखा जाएगा, तो उसमें केवल युद्धों और आंदोलनों का ही नहीं, बल्कि उन अनगिनत बुनकर परिवारों का भी उल्लेख होना चाहिए जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में अपने करघों को जीवित रखा। क्योंकि भारत की स्वतंत्रता केवल तलवारों की धार पर नहीं आई; उसमें करघों की टक-टक, किसानों का पसीना, मजदूरों का श्रम और कारीगरों का मौन प्रतिरोध भी समान रूप से शामिल था।

आज जब हम आत्मनिर्भर भारत, स्थानीय उत्पादन, स्वदेशी उद्योग और श्रम सम्मान की बात करते हैं, तब भारतीय बुनकरों का यह इतिहास और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है। यह हमें स्मरण कराता है कि किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसके राजमहलों, सेनाओं और सत्ता केंद्रों में नहीं, बल्कि उन श्रमशील हाथों में निहित होती है जो निरंतर सृजन करते हैं।

भारतीय बुनकर केवल वस्त्र निर्माता नहीं थे।

वे भारत की सांस्कृतिक आत्मा के संरक्षक थे।

वे श्रम-गरिमा के उपासक थे।

वे आत्मनिर्भरता के अग्रदूत थे।

और वे स्वतंत्रता चेतना के मौन प्रहरी थे।

यह उद्देश्य केवल इतिहास के एक उपेक्षित पक्ष को सामने लाना नहीं है, बल्कि उन लाखों श्रमशील हाथों को सम्मान देना भी है, जिनकी कहानी इतिहास के मुख्य पृष्ठों में अक्सर अनकही रह गई। जब भी भारत के स्वतंत्रता संग्राम का स्मरण किया जाए, तब उन करघों की ध्वनि को भी सुनना चाहिए, जो सदियों तक इस राष्ट्र की अस्मिता बुनते रहे। क्योंकि, भारत की स्वतंत्रता केवल रणभूमि में नहीं जीती गई थी;

उसका एक महत्वपूर्ण अध्याय उन करघों पर भी लिखा गया था, जहाँ श्रम ने स्वाभिमान को बुना, और स्वाभिमान ने स्वतंत्रता की चेतना को जन्म दिया।

जब तक करघों की टक-टक इतिहास की स्मृतियों में सुनाई देती रहेगी, तब तक भारतीय बुनकरों का संघर्ष, उनका स्वाभिमान और उनका योगदान राष्ट्र की चेतना में अमर बना रहेगा।

भारतीय बुनकर भारत की आत्मा

“उनके करघों की टक-टक में
केवल धागे नहीं, सभ्यता,
संस्कृति और स्वाभिमान
बुनता था।”

प्रकरण 10

इतिहास के साक्षी

भारतीय बुनकरों पर इतिहासकारों और विचारकों की दृष्टि

शोषण की कहानी

औपनिवेशिक नीतियों,
अन्यायपूर्ण करों और
बाज़ार के छल ने उनके
जीवन को छीन लिया,
परंतु उनका स्वाभिमान
कभी नहीं।

भारतीय बुनकर केवल वस्त्र निर्माता नहीं थे,
वे हमारी संस्कृति, अर्थव्यवस्था और समाज की रीढ़ थे।
उनके श्रम, कौशल और सृजनशीलता ने भारत को
विश्व में विशिष्ट पहचान दी। समय के साथ उन्होंने शोषण,
दमन और अन्याय सहा, फिर भी वे अपनी
असाधारण धैर्य, मौन प्रतिरोध और संघर्ष के
माध्यम से इतिहास के अमर साक्षी बने रहे।
इतिहासकारों और विचारकों ने उनकी भूमिका,
पीड़ा और योगदान को विभिन्न दृष्टिकोणों से
देखा और समझा है।

इतिहास के मौन नायक

न नारे, न बड़े नाम, फिर भी इन बुनकरों
ने भारत की समृद्धि, सुंदरता और
सांस्कृतिक विविधता को अपने हाथों से
गठित किया।

संघर्ष से स्वाभिमान तक

मौन सहन से लेकर प्रतिरोध तक
की उनकी यात्रा स्वतंत्रता
चेतना की आधारभूमि बनी।

महात्मा गांधी



“भारत का भविष्य
उसके गाँवों में बसता है
और गाँवों की
आत्मा बुनकर है।”

गांधीजी ने कल्ले और खादी
के माध्यम से बुनकरों को
आत्मनिर्भर भारत की आधारशिला
के रूप में देखा।

आर. सी. दत्त



“भारतीय बुनकरों की
सच्चा पर क्लिटिया वासन की
आर्थिक नीतियाँ सबसे
बड़ा आघात थी।”

उन्होंने अपनी पुस्तक Economic
History of India में बुनकरों
के क्लिना को उपनिवेशवाद की
आर्थिक छूट का परिणाम बताया।

दानियल थॉर्लटन



“भारत के बुनकर संसार
में अद्वितीय थे, उनके
हस्तनिर्मित वस्त्रों की
गुलना नहीं की जा सकती।”

उन्होंने भारतीय वस्त्रों की
गुणवत्ता, कला और बारीकी
की विद्वधर में प्रशंसा की।

रोमिला थापर



“बुनकरों का इतिहास
भारत के सामाजिक
और आर्थिक इतिहास
का अभिन्न अंग है।”

उन्होंने बुनकरों को भारतीय
समाज में महत्वपूर्ण उत्पादक वर्ग
और संस्कृति के संवाहक
के रूप में देखा।

इरफान हबीब



“मुगल काल में बुनकर
अर्थव्यवस्था के एक महत्वपूर्ण
स्तंभ थे जिन्हें बाद में इंग्लिश पर
धकेल दिया गया।”

उन्होंने बुनकरों के शोषण
और औपनिवेशिक नीतियों
के कारण उनकी दुर्दशा को
रेखांकित किया।

डॉ. बिपिन चंद्र



“भारतीय स्वतंत्रता
आंदोलन की चेतना
के बीच बुनकरों और
किसानों की पीड़ा से ही
अंकुरित हुए।”

उन्होंने कहा कि बुनकरों
का संघर्ष स्वतंत्रता आंदोलन
की सामाजिक भूमि
तैयार करता है।

साझा निष्कर्ष

- भारतीय बुनकरों ने भारत की आर्थिक समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया।
- औपनिवेशिक नीतियों ने उनके जीवन और उद्योग को गंभीर क्षति पहुँचाई।
- उनका संघर्ष, धैर्य और स्वाभिमान भारत की स्वतंत्रता चेतना का प्रेरक बना।
- इतिहासकारों और विचारकों ने उनके योगदान और पीड़ा को स्वीकारा है।



बुनकर-श्रम, शिल्प और स्वाभिमान के प्रतीक

करघों की टक-टक केवल धागों की नहीं,
यह भारत की आत्मा की आवाज़ है,
जो इतिहास से भविष्य तक गुंजती रहेगी।



भारतीय बुनकर इतिहास के साक्षी ही नहीं बल्कि भारत की आत्मा के रचनाकार हैं।

१०. इतिहास के साक्षी भारतीय बुनकरों पर इतिहासकारों और विचारकों की दृष्टि

मौ

न करघों से राष्ट्रीय चेतना तक इतिहासकारों और विचारकों की दृष्टि में भारतीय बुनकर इतिहास के केंद्र में भारतीय बुनकरों का इतिहास केवल आर्थिक इतिहास का विषय नहीं है। यह संस्कृति, श्रम, आत्मसम्मान, सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय अस्मिता से जुड़ा हुआ विषय है। दुर्भाग्यवश इतिहास लेखन की मुख्यधारा में लंबे समय तक बुनकरों, कारीगरों और श्रमिक समुदायों को अपेक्षित स्थान नहीं मिला। फिर भी अनेक इतिहासकारों, साहित्यकारों, अर्थशास्त्रियों और राष्ट्रचिंतकों ने समय-समय पर इस उपेक्षा की ओर ध्यान आकर्षित किया।

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, इतिहास जनता का भी होता है बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का मानना था कि इतिहास केवल राजाओं और युद्धों का वृत्तान्त नहीं होना चाहिए। उन्होंने चिंता व्यक्त की थी कि भारतीय इतिहास में सामान्य जनता, किसानों, कारीगरों और श्रमिकों की भूमिका को पर्याप्त स्थान नहीं मिला। उनके अनुसार यदि इतिहास में केवल शासकों का वर्णन होगा और समाज की उत्पादक शक्तियों का उल्लेख नहीं होगा, तो वह इतिहास अधूरा रहेगा। भारतीय बुनकरों की स्थिति इसी ऐतिहासिक उपेक्षा का उदाहरण है। जिन्होंने भारत की आर्थिक समृद्धि का निर्माण किया, वही लोग इतिहास के मुख्य पृष्ठों से लगभग गायब रहे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर संस्कृति के वास्तविक निर्माता, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विश्वास था कि किसी राष्ट्र की आत्मा उसके लोकजीवन में निहित होती है। उनकी दृष्टि में संस्कृति केवल राजमहलों, मंदिरों या साहित्यिक ग्रंथों में नहीं बसती; वह गाँवों, खेतों, कार्यशालाओं और करघों पर भी जीवित रहती है। उन्होंने लिखा कि जब कोई समाज अपने लोकशिल्प और श्रमजीवी समुदायों की उपेक्षा करता है, तब उसकी सांस्कृतिक जड़ें कमजोर होने लगती हैं। भारतीय बुनकरों ने वस्त्रों के माध्यम से केवल शरीर नहीं ढका, बल्कि भारत की सांस्कृतिक पहचान को भी संरक्षित रखा।

दादाभाई नौरोजी निर्धनता का औपनिवेशिक आधार: दादाभाई नौरोजी ने अपनी प्रसिद्ध “ड्रेन थ्योरी” के माध्यम से यह सिद्ध किया कि भारत की गरीबी

प्राकृतिक नहीं थी। उन्होंने बताया कि भारत की संपत्ति योजनाबद्ध रूप से ब्रिटेन भेजी जा रही थी। इस आर्थिक निकासी का सबसे अधिक दुष्प्रभाव उन समुदायों पर पड़ा जो उत्पादन और श्रम आधारित अर्थव्यवस्था से जुड़े थे। भारतीय बुनकरों की निर्धनता उनके अनुसार किसी व्यक्तिगत विफलता का परिणाम नहीं, बल्कि औपनिवेशिक आर्थिक शोषण का प्रत्यक्ष परिणाम थी।

रोमेशचन्द्र दत्त आर्थिक इतिहास की त्रासदी, रोमेशचन्द्र दत्त ने भारतीय अर्थव्यवस्था के इतिहास का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट लिखा कि ब्रिटिश शासन की नीतियों ने भारतीय उद्योगों की रीढ़ तोड़ दी। उनके अनुसार भारतीय वस्त्र उद्योग का पतन केवल व्यापारिक घटना नहीं थी; यह लाखों परिवारों के सामाजिक और आर्थिक विघटन की प्रक्रिया थी। उन्होंने यह भी बताया कि जिस देश के वस्त्र विश्व बाजारों में प्रतिष्ठित थे, वही देश विदेशी कपड़ों का उपभोक्ता बनकर रह गया।

महादेव गोविंद रानाडे राष्ट्र की शक्ति उसके उत्पादकों में, रानाडे का मानना था कि किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसके उत्पादक वर्गों में गहराई से विद्यमान होती है। उन्होंने कुटीर उद्योगों और स्थानीय उत्पादन के संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया। उनकी दृष्टि में बुनकर, किसान और कारीगर केवल आर्थिक इकाइयाँ नहीं थे, बल्कि राष्ट्रीय समृद्धि के आधारस्तंभ थे।

कार्ल मार्क्स वैश्विक अर्थव्यवस्था और भारतीय बुनकर, कार्ल मार्क्स ने ब्रिटिश औद्योगिक क्रांति और उसके प्रभावों का विश्लेषण करते हुए भारतीय हस्तशिल्प के विनाश का उल्लेख किया। उन्होंने लिखा कि ब्रिटेन के औद्योगिक विस्तार की कीमत भारत जैसे देशों के पारंपरिक उद्योगों को चुकानी पड़ी। हालांकि उनका दृष्टिकोण यूरोपीय था, फिर भी भारतीय वस्त्र उद्योग के पतन पर उनकी टिप्पणियाँ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत मानी जाती हैं।

महात्मा गांधी करघे को राष्ट्र की आत्मा बनाना, महात्मा गांधी ने भारतीय बुनकरों की पीड़ा को समझा और चरखे को राष्ट्रीय पुनर्जागरण का प्रतीक बनाया। उनका प्रसिद्ध कथन था। “भारत की मुक्ति उसके कुटीर उद्योगों के पुनर्जीवन में

समाया हुआ है।” गांधीजी के लिए खादी केवल वस्त्र नहीं थी; वह स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता और आर्थिक स्वतंत्रता का प्रतीक थी। उन्होंने बुनकरों को भारत की आत्मा कहा।

डॉ. भीमराव आंबेडकर श्रम का सम्मान और सामाजिक न्याय, डॉ. आंबेडकर का मानना था कि किसी भी समाज की प्रगति का मूल्यांकन इस आधार पर होना चाहिए कि वह अपने श्रमिक वर्ग को कितना सम्मान देता है। उन्होंने बार-बार कहा कि उत्पादन करने वाले समुदायों को सामाजिक सम्मान और आर्थिक अवसर दोनों मिलने चाहिए। उनकी दृष्टि में श्रम का अपमान लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों के विरुद्ध है। बुनकर समुदाय का संघर्ष इस बात का उदाहरण था कि आर्थिक उत्पादन करने वाले वर्गों को सामाजिक सम्मान से वंचित रखा गया।

जवाहरलाल नेहरू भारत की मिश्रित सांस्कृतिक विरासत: नेहरू ने अपनी पुस्तक “द डिस्कवरी ऑफ इंडिया” में भारतीय शिल्प और कुटीर उद्योगों का उल्लेख करते हुए लिखा कि भारत की सभ्यता का निर्माण केवल राजाओं ने नहीं किया, बल्कि कारीगरों और श्रमिकों ने भी किया। उनके अनुसार भारतीय वस्त्र उद्योग देश की रचनात्मक शक्ति का प्रतीक था।

धर्मपाल भारतीय परंपरागत ज्ञान का पुनर्पाठ: प्रख्यात चिंतक धर्मपाल ने औपनिवेशिक काल से पूर्व भारत की उत्पादन व्यवस्था और स्थानीय अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि भारत के गाँव आत्मनिर्भर थे और उनमें कारीगरों एवं बुनकरों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उनके शोध से यह स्पष्ट होता है कि औपनिवेशिक शासन से पूर्व भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था कहीं अधिक सशक्त थी।

इरफ़ान हबीब भारतीय शिल्पकार वर्ग का महत्व: इरफ़ान हबीब ने भारतीय अर्थव्यवस्था और उत्पादन संरचना का अध्ययन करते हुए शिल्पकार वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका पर प्रकाश डाला। उनके अनुसार भारतीय कारीगरों और बुनकरों ने केवल उत्पादन नहीं किया, बल्कि सामाजिक संरचना और व्यापारिक नेटवर्क के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

रामविलास शर्मा श्रम और राष्ट्रवाद: रामविलास शर्मा का मानना था कि भारत का राष्ट्रवाद केवल राजनीतिक चेतना से नहीं बना, बल्कि श्रमशील वर्गों के योगदान से भी निर्मित हुआ। उन्होंने श्रमिकों और कारीगरों की भूमिका को भारतीय राष्ट्रीय चेतना का अभिन्न अंग माना।

इतिहासकारों का साझा संदेश: भले ही इन सभी विचारकों की पृष्ठभूमि, दृष्टिकोण और अध्ययन क्षेत्र अलग-अलग थे, फिर भी उनके विचारों में एक आश्चर्यजनक समानता दिखाई देती है। वे सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि भारत की वास्तविक शक्ति उसके श्रमशील समाज में समाया हुआ है। इतिहास ने उन्हें कारीगर कहा, किन्तु वास्तव में वे भारत की सभ्यता के मौन वास्तुकार थे, जिन्होंने धागों में संस्कृति और श्रम में स्वाभिमान को जीवित रखा और वे उस मौन संघर्ष के योद्धा थे, जिनकी आवाज़ इतिहास के मुख्य पृष्ठों तक बहुत देर से पहुँची।

आज जब हम भारतीय इतिहास का पुनर्पाठ करते हैं, तब हमें इतिहास के उन मौन नायकों को भी स्मरण करना चाहिए जिन्होंने बिना किसी सत्ता, पद या प्रसिद्धि के राष्ट्र की नींव को मजबूत बनाया। भारत के करघों पर केवल कपड़ा नहीं बुना गया।

वहाँ सभ्यता बुनी गई।

वहाँ संस्कृति बुनी गई।

वहाँ आत्मसम्मान बुना गया।

और वहीं भारत की आत्मा ने अपनी सबसे सुंदर अभिव्यक्ति पाई। “राजाओं ने साम्राज्य बनाए होंगे, परन्तु भारत की आत्मा को उसके किसानों, कारीगरों और बुनकरों ने जीवित रखा।”

"करघा चलता है तो केवल वस्त्र नहीं बनते,
एक राष्ट्र का आत्मविश्वास भी आकार लेता है।"

नाथु सोसा

बुनकरों की पृष्ठभूमि

- ईस्ट इंडिया कंपनी की नीतियों ने बुनकरों को दरिद्र बना दिया था।
- जबबरन सस्ता मास, लगान, कर और दसालों के शोषण से जीवन असहनीय हो गया था।
- करधे उजड़ रहे थे, कर्ज़ बढ़ रहा था, और रोज़गार छीन रहा था।



प्रकरण 11

भारतीय बुनकर और 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम

1857 का संग्राम केवल सैनिकों का विद्रोह नहीं था, यह भारत की जनता का स्वाभिमान-युद्ध था। इसमें बुनकरों ने अपनी पीड़ा, आक्रोश और देशप्रेम के साथ सक्रिय भाग लिया। अंग्रेजों के आर्थिक उत्पीड़न से त्रस्त बुनकरों ने इस संग्राम को अपनी मुक्ति का अवसर माना।

1857 के संग्राम में बुनकरों की भागीदारी

- बुनकरों ने विद्रोहियों को रसद, वस्त्र, आश्रय और धन उपलब्ध कराया।
- कई स्थानों पर उन्होंने हथियार बनाने और उनकी मरम्मत में सहयोग दिया।
- सन्देश पहुँचाने, सूचनाएँ देने और गुप्त संपर्क बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।



प्रमुख केंद्र जहाँ बुनकरों ने योगदान दिया

- अवध (लखनऊ, फैजाबाद, सुल्तानपुर)
- बनारस और आसपास के क्षेत्र
- कानपुर, झाँसी, ग्वालियर
- दिल्ली, मेरठ, अलीगढ़, रोहिलखण्ड
- बिहार के कुछ हिस्से



“हमारे करघे उजाड़े तुमने, हमारी रोज़ी-रोटी छीनी, अब नहीं सहेंगे अत्याचार, देश की लाज रखनी है।”

- एक बुनकर का उद्गार

बुनकर समुदाय के वीर सिपाही

- मोतवी अहमदुल्लाह खाह (फैजाबाद)
- बुनकर परिवार से, विद्रोह के नेता।
- अली रज़ा बुनकर (अवध)
- जनता को संगठित कर अंग्रेजों से लड़े।
- रंगीलाल बुनकर (कानपुर क्षेत्र)
- रसद, गुप्तचर और सहयोग में अग्रणी।
- अनेक गुप्तनाम बुनकर जिन्होंने अपने प्राण न्योछावर कर दिए।



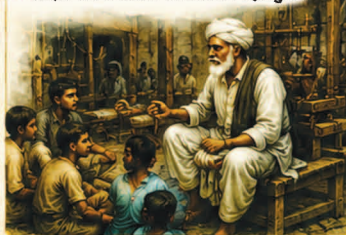
अंग्रेजों की क्रूर दमन नीति

- विद्रोह में भागीदारी के कारण बुनकरों पर भयंकर अत्याचार किये गए।
- गाँव जलाये गए, घर लुटे गए, करधे तोड़े गए।
- अनेक बुनकरों को फाँसी दी गई या दूर-दराज स्थानों पर भेज दिया गया।
- आर्थिक विनाश और अधिक गहरा गया।



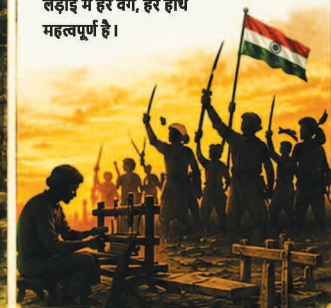
1857 के संग्राम का प्रभाव

- बुनकरों को यह बोध हुआ कि उनकी दासता का मूल कारण विदेशी शासन है।
- यह संग्राम उनके मन में स्वतंत्रता की ज्वाला बनकर जलता रहा।
- आने वाली पीढ़ियों में राष्ट्रीय चेतना को बल मिला।
- स्वदेशी और स्वाभिमान का बीज और गहरा हुआ।



उनकी विरासत

बुनकरों ने करघे की टक-टक को स्वतंत्रता के रणभेरी में बदल दिया। उन्होंने सिद्ध किया कि स्वाधीनता की लड़ाई में हर वर्ग, हर हाथ महत्वपूर्ण है।



बुनकरों का योगदान 1857 के संग्राम में अमर है। उन्होंने अपने आँसू, अपने करघे, अपने श्रम और अपने प्राण भारत माता के चरणों में अर्पित कर दिए। उनकी यह गाथा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की अमूल्य धरोहर है।



११. भारतीय बुनकर और १८५७ का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम

बुनकरों की भूमिका और जनचेतना, भूमिका भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में वर्ष १८५७ का विशेष महत्व है। इसे भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, सिपाही विद्रोह, जनविद्रोह अथवा राष्ट्रीय चेतना का प्रारंभिक विस्फोट कहा जाता है। सामान्यतः १८५७ की चर्चा सैनिकों, राजाओं, नवाबों, जमींदारों और क्रांतिकारियों के संदर्भ में की जाती है, किन्तु इस व्यापक जनआंदोलन के पीछे भारतीय समाज के अनेक श्रमशील वर्गों की पीड़ा, असंतोष और संघर्ष भी समान रूप से विद्यमान था। किसानों, कारीगरों, मजदूरों और बुनकरों ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इस जनचेतना को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। १८५७ का संग्राम केवल राजनीतिक सत्ता परिवर्तन का प्रयास नहीं था; यह उस आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक असंतोष का विस्फोट था जो लगभग एक शताब्दी से भारतीय समाज के भीतर जमा हो रहा था। भारतीय बुनकरों का संघर्ष इसी व्यापक पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण हिस्सा था।

सन् १८५७ पूर्व की परिस्थितियाँ, अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक भारत विश्व के प्रमुख वस्त्र उत्पादक देशों में गिना जाता था। बंगाल की मलमल, बनारस की रेशमी बुनावट, गुजरात का पटोला, राजस्थान की दरी, दक्षिण भारत के सूती वस्त्र और कश्मीर की पश्मीना विश्वभर में प्रसिद्ध थे। लाखों परिवार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से वस्त्र उद्योग से जुड़े हुए थे। किन्तु प्लासी (१७५७) और बक्सर (१७६४) के बाद परिस्थितियाँ तेजी से बदलने लगीं। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। भारतीय उद्योगों को कमजोर करने और ब्रिटिश मिलों में निर्मित वस्त्रों के लिए बाजार तैयार करने की नीति अपनाई गई। भारतीय बुनकरों को कम कीमत पर वस्त्र बेचने के लिए मजबूर किया गया। स्वतंत्र व्यापार पर प्रतिबंध लगाए गए। करों का बोझ बढ़ाया गया। विदेशी कपड़ों का आयात बढ़ता गया और भारतीय हस्तकरघा उद्योग धीरे-धीरे संकट में फँसता गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक लाखों बुनकर आर्थिक कठिनाइयों से जूझ रहे थे। अनेक परिवारों को अपना पैतृक व्यवसाय छोड़ना पड़ा। कई लोग कृषि मजदूर बन गए। कुछ नगरों की ओर पलायन कर गए। यह केवल आर्थिक परिवर्तन नहीं था; यह भारतीय समाज की पारंपरिक संरचना को प्रभावित करने वाला व्यापक संकट था। सैनिकों, किसानों और बुनकरों का संबंध सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम को केवल सैनिक विद्रोह के रूप में देखना इतिहास को सीमित दृष्टि से देखना होगा। उस समय का भारतीय समाज परस्पर जुड़ा हुआ था। सैनिक किसान परिवारों से आते थे। किसान स्थानीय कारीगरों और बुनकरों पर निर्भर थे। बुनकर स्थानीय अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा थे। जब अंग्रेजी नीतियों से किसानों की स्थिति खराब हुई, जब कारीगरों की आय घटने लगी और जब बुनकरों के करघे संकट में आए, तब इसका प्रभाव पूरे समाज पर पड़ा। अनेक सैनिक ऐसे परिवारों से आते थे जिनकी आजीविका कृषि या कुटीर उद्योगों पर आधारित थी। वे अपने गाँवों की बदलती परिस्थितियों को देख रहे थे। वे जानते थे कि अंग्रेजी शासन केवल राजनीतिक नियंत्रण नहीं, बल्कि आर्थिक विनाश भी लेकर आया है। इस प्रकार सैनिकों का असंतोष और जनता की पीड़ा एक-दूसरे से जुड़ने लगी। यही कारण है कि १८५७ का आंदोलन शीघ्र ही सैनिक छावनियों से निकलकर जनआंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर गया।

स्थानीय अर्थव्यवस्था का पतन भारतीय बुनकरों की स्थिति को समझे बिना १८५७ की पृष्ठभूमि को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। ब्रिटिश शासन से पूर्व भारतीय गाँव आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयाँ थे। गाँवों में किसान अन्न उत्पादन करते थे, बुनकर वस्त्र बनाते थे, लोहार उपकरण तैयार करते थे और अन्य कारीगर आवश्यक वस्तुओं का निर्माण करते थे। यह व्यवस्था स्थानीय अर्थव्यवस्था को स्थिर बनाए रखती थी।

लेकिन ब्रिटिश नीतियों ने इस संतुलन को तोड़ दिया।

विदेशी कपड़ों के आयात से स्थानीय उत्पादन प्रभावित हुआ।

कुटीर उद्योग कमजोर होने लगे ।
गाँवों की क्रय शक्ति घटने लगी ।
कारीगरों की आय कम हो गई ।
और आर्थिक असुरक्षा बढ़ती गई ।

अनेक क्षेत्रों में बुनकरों को अपने करघे बंद करने पड़े । कुछ ने खेती का सहारा लिया । कुछ ने मजदूरी शुरू की । कुछ कर्ज के बोझ तले दब गए ।

यह आर्थिक संकट धीरे-धीरे सामाजिक असंतोष में बदलने लगा ।

बुनकर समुदाय की भागीदारी:

१८५७ के संग्राम में बुनकरों की भागीदारी का स्वरूप क्षेत्र विशेष के अनुसार भिन्न था । यह आवश्यक नहीं कि सभी बुनकरों ने हथियार उठाए हों या युद्ध में भाग लिया हो । उनकी भूमिका अनेक रूपों में दिखाई देती है ।

कुछ क्षेत्रों में बुनकरों ने विद्रोही समूहों को सहायता प्रदान की ।

कुछ ने स्थानीय स्तर पर अंग्रेजी प्रशासन के विरुद्ध असहयोग का मार्ग अपनाया ।

कुछ ने आर्थिक सहयोग दिया ।

कुछ ने संदेशों और सूचनाओं के आदान-प्रदान में भूमिका निभाई ।

और कुछ स्थानों पर उन्होंने सीधे जनविद्रोहों का समर्थन किया ।

विशेष रूप से उत्तर भारत, बंगाल और अवध क्षेत्र में अनेक कारीगर एवं बुनकर समुदाय स्थानीय प्रतिरोध आंदोलनों के साथ जुड़े हुए दिखाई देते हैं ।

भले ही इतिहास के मुख्य दस्तावेजों में उनके नाम व्यापक रूप से दर्ज नहीं हुए, किन्तु यह स्पष्ट है कि १८५७ केवल सैनिकों का आंदोलन नहीं था। यह उस जनता का आंदोलन भी था जो वर्षों से आर्थिक और सामाजिक अन्याय झेल रही थी।

जनचेतना का विकास सन् १८५७ का संग्राम भारतीय जनचेतना के विकास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था।

इसने भारतीय समाज को यह समझाया कि विदेशी शासन केवल राजनीतिक अधिकारों का प्रश्न नहीं है।

यह आर्थिक अधिकारों का भी प्रश्न है।

यह सामाजिक सम्मान का भी प्रश्न है।

यह सांस्कृतिक अस्मिता का भी प्रश्न है।

भारतीय बुनकरों ने पहले ही अनुभव कर लिया था कि अंग्रेजी शासन उनकी आजीविका और आत्मनिर्भरता के लिए घातक है। इसलिए उनके भीतर असंतोष की भावना पहले से मौजूद थी।

यह असंतोष धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना का हिस्सा बनने लगा।

ब्रिटिश प्रतिशोध सन् १८५७ के संग्राम को दबाने के बाद ब्रिटिश शासन ने व्यापक प्रतिशोध की नीति अपनाई।

हजारों लोगों को दंडित किया गया।

गाँवों को नष्ट किया गया।

संपत्तियां जब्त की गईं।

अनेक परिवारों को आर्थिक और सामाजिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

इस प्रतिशोध का प्रभाव उन समुदायों पर भी पड़ा जो स्थानीय स्तर पर विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति रखते थे ।

कारीगरों, किसानों और बुनकरों की स्थिति और अधिक कमजोर हो गई ।

लेकिन ब्रिटिश शासन का यह दमन भारतीय जनता की स्वतंत्रता की आकांक्षा को समाप्त नहीं कर सका ।

इसके विपरीत, इसने आने वाली पीढ़ियों में राष्ट्रीय चेतना को और अधिक मजबूत किया ।

बुनकरों का योगदान इतिहास का उपेक्षित अध्याय, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में बुनकरों के योगदान पर अपेक्षाकृत कम चर्चा हुई है । इसका एक कारण यह भी है कि उनका संघर्ष अधिकतर आर्थिक और सामाजिक स्तर पर था । वे बड़े राजनीतिक नेता नहीं थे । उनके पास लिखित दस्तावेज कम थे । उनका इतिहास अधिकतर लोकस्मृतियों, पारिवारिक परंपराओं और क्षेत्रीय अनुभवों में सुरक्षित रहा ।

फिर भी यह निर्विवाद सत्य है कि भारतीय बुनकरों ने औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का सबसे पहले और सबसे गहरा प्रभाव झेला ।

उनकी पीड़ा ने जनअसंतोष को जन्म दिया ।

उनके संघर्ष ने स्वदेशी चेतना की नींव रखी ।

और उनके आत्मसम्मान ने राष्ट्रीय जागरण को प्रेरणा दी ।

सन् १८५७ का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम केवल सैनिक विद्रोह नहीं था; वह भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों की सामूहिक पीड़ा और प्रतिरोध का परिणाम था । किसानों, कारीगरों और बुनकरों की आर्थिक दुर्दशा ने इस जनचेतना को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

भारतीय बुनकरों ने भले ही इतिहास के मंच पर प्रमुख स्थान न पाया हो, किन्तु उनके करघों की मौन पुकार इस संघर्ष की पृष्ठभूमि में स्पष्ट रूप से सुनाई देती है ।

उन्होंने अपने श्रम, अपनी कला और अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष किया ।

उन्होंने आर्थिक दासता को महसूस किया ।

उन्होंने स्थानीय अर्थव्यवस्था के विनाश को देखा ।

और उन्होंने उस चेतना को जन्म दिया, जिसने आगे चलकर स्वदेशी आंदोलन, खादी आंदोलन और स्वतंत्रता संघर्ष को वैचारिक आधार प्रदान किया ।

सन् १८५७ की क्रांति की ज्वाला केवल सैनिक छावनियों में नहीं भड़की थी; उसकी चिंगारिया उन करघों के बीच भी सुलग रही थीं, जहाँ भारतीय बुनकर अपने अस्तित्व और स्वाभिमान को बचाने के लिए संघर्ष कर रहे थे ।

“१८५७ के संघर्ष में केवल सैनिक ही नहीं लड़े थे; करघों पर बैठा बुनकर भी अपने ढंग से स्वतंत्रता की लड़ाई का सहभागी था । किसी ने वस्त्र दिए, किसी ने रसद पहुँचाई, किसी ने संदेश पहुँचाए और किसी ने अपने प्राणों का बलिदान दिया । इतिहास भले ही उनके सभी नाम न जानता हो, लेकिन भारत की स्वतंत्रता की नींव में उनके श्रम, त्याग और साहस की अमिट छाप अंकित है ।”

"बुनकर के हाथों ने भारत को ढका ही नहीं,
भारत की आत्मा को भी सहेजकर रखा है ।"

नाथु सोसा

कभी समृद्धि की धरती

- 18 वीं सदी तक बंगाल का मुसलिन और रेयामी कपड़ा दुनिया भर में प्रसिद्ध था।
- ढाका की मलमल 'कपास की कुहार' कही जाती थी।
- बुनकरों का जीवन सम्मान, स्वावलंबन और समृद्धि से भरा था।



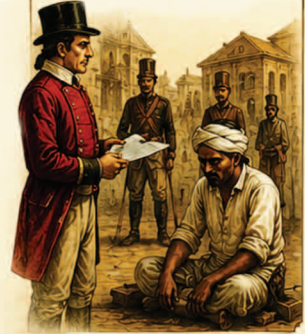
प्रकरण 12

बंगाल के बुनकरों की करुण गाथा

बंगाल के बुनकरों ने अपनी कला, परिश्रम और सूक्ष्म कौशल से दुनिया को अद्भुत कपड़े दिए, लेकिन औपनिवेशिक नीतियों ने उनकी खुशहाली छीन ली। यह गाथा उनके संघर्ष, पीड़ा और मौन बलिदान की है।

ईस्ट इंडिया कंपनी की नीतियाँ

- कंपनी ने बुनकरों को जबरन कम दामों पर कपड़ा देने को मजबूर किया।
- अग्रिम देकर उन्हें बंधक बना दिया जाता था।
- अन्य व्यापार करने और खुले बाजार में बेचने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।



शोषण का जाल

- कपड़े की किंमत मनमानी तरीके से घटा दी जाती थी।
- समय पर डिलीवरी न होने पर जुर्माना और मारपीट।
- बुनकरों को कर्ज के जाल में फँसाकर उनका शोषण किया गया।



“ ढाका की मलमल हवा से बातें करती थी, लेकिन बुनकरों की आँखों से आँसू कोई नहीं देख पाया। ”

औद्योगिक क्रांति का प्रभाव

- इंग्लैंड की मशीनों से बने सस्ते कपड़े भारतीय बाजार में उतारे गए।
- हस्तनिर्मित कपड़ों की माँग घटती गई।
- हजारों बुनकर बेरोजगार हो गए।



टूटते करघे, उजड़ते घर

- काम न मिलने से करघे टूटने लगे।
- बुनकर खेती-मजदूरी या भीख मांगने को मजबूर हुए।
- कई परिवार भूख, बीमारी और कर्ज के कारण बरबाद हो गए।



मौन प्रतिरोध और आत्मसम्मान

- बुनकरों ने कई बार विरोध किया, लेकिन उनकी आवाज दबा दी गई।
- फिर भी उन्होंने अपनी कला और आत्मसम्मान नहीं छोड़ा।
- उनकी पीड़ा ने आने वाली पीढ़ियों के मन में स्वतंत्रता की चिंगारी जगा दी।



करुण अंत, अमर विरासत

- बंगाल के बुनकरों की करुण कहानी भारतीय इतिहास का काला अध्याय है।
- उनकी कला, उनका संघर्ष और उनका त्याग हमें याद दिलाता है कि स्वतंत्रता कितनी अनमोल है।



कुछ तथ्य

- 1750 तक बंगाल विश्व का प्रमुख वस्त्र निर्यातक था।
- 1850 तक लाखों बुनकर निर्धनता की ओर धकेले दिए गए।
- विभिन्न अध्ययनों के अनुसार लगभग 10 लाख से अधिक बुनकर प्रभावित हुए।



अद्भुत कला और कौशल



कठोर परिश्रम और समर्पण



आत्मसम्मान और स्वाभिमान



स्वतंत्रता चेतना की नींव

आज की सिख

हमें उनके संघर्ष को याद रखना चाहिए और स्वदेशी स्वावलंबन तथा अपने श्रमिकों के सम्मान के लिए सदैव प्रयासरत रहना चाहिए।

बंगाल के बुनकरों की यह करुण गाथा केवल इतिहास नहीं, बल्कि हमारे आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की प्रेरणा है।

१२. बंगाल के बुनकरों की करुण गाथा

ढा

का मलमल से निर्धनता तक भारतीय वस्त्र उद्योग के इतिहास में यदि किसी क्षेत्र ने विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त की, तो वह था बंगाल। एक समय ऐसा था जब बंगाल के करघों से निकलने वाली मलमल को संसार का सबसे उत्कृष्ट वस्त्र माना जाता था। उसकी महीनता, कोमलता और कलात्मक सौंदर्य ने यूरोप, अरब, फ़ारस और एशिया के अनेक देशों को आकर्षित किया था। ढाका की मलमल केवल वस्त्र नहीं थी; वह भारतीय शिल्पकला, श्रम-संस्कृति और आर्थिक समृद्धि का जीवंत प्रतीक थी। किन्तु इतिहास की सबसे बड़ी विडम्बनाओं में से एक यह है कि जिस बंगाल ने विश्व को उत्कृष्ट वस्त्र दिए, वही बंगाल औपनिवेशिक नीतियों के कारण निर्धनता, बेरोजगारी और आर्थिक पतन का प्रतीक बन गया। ढाका मलमल का इतिहास केवल एक उद्योग के उत्थान और पतन की कहानी नहीं है; यह औपनिवेशिक शोषण, आर्थिक अन्याय और श्रमशील समाज की पीड़ा का मार्मिक दस्तावेज है।

ढाका का स्वर्णिम काल अठारहवीं शताब्दी के पूर्व बंगाल भारत के सबसे समृद्ध क्षेत्रों में गिना जाता था। विशेष रूप से वर्तमान बांग्लादेश स्थित ढाका नगर विश्व प्रसिद्ध वस्त्र उत्पादन केंद्र था। यहाँ निर्मित मलमल की माँग केवल भारत तक सीमित नहीं थी, बल्कि यूरोप, मध्य एशिया, अरब और अफ्रीका तक फैली हुई थी। ढाका की मलमल इतनी महीन होती थी कि विदेशी यात्रियों ने उसे “Woven Air” अर्थात् “हवा में बुना हुआ वस्त्र” कहा था। कहा जाता है कि मलमल का पूरा थान एक छोटी अंगूठी के भीतर से निकाला जा सकता था। उसकी पारदर्शिता और कोमलता ने उसे विश्व के सबसे विलासितापूर्ण वस्त्रों में स्थान दिलाया। मुगल दरबार में मलमल को विशेष सम्मान प्राप्त था। शाही परिवारों, नवाबों और राजघरानों के लिए विशेष प्रकार की मलमल तैयार की जाती थी। “आब-ए-रवाँ”, “शबनम”, “जमदानी” और “मलमल खास” जैसे नाम उसकी उत्कृष्टता के प्रमाण थे। ढाका के हजारों बुनकर परिवार पीढ़ियों से इस कला में पारंगत थे। उनके लिए बुनाई केवल रोजगार नहीं थी; वह उनकी पहचान, उनकी परंपरा और उनका गौरव थी।



बंगाल की समृद्ध अर्थव्यवस्था और बुनकर समाज ढाका की मलमल केवल एक वस्त्र उद्योग नहीं थी; वह बंगाल की अर्थव्यवस्था का आधार थी। सूत तैयार करने वाले, रंगरेज, व्यापारी, नाविक, परिवहनकर्ता और बुनकर-सभी इस विशाल आर्थिक श्रृंखला का हिस्सा थे। गाँवों में महिलाएँ सूत तैयार करती थीं। कुशल बुनकर महीनों तक करघों पर बैठकर उत्कृष्ट मलमल तैयार करते थे। व्यापारी इन वस्त्रों को विभिन्न बाजारों तक पहुँचाते थे। इस प्रकार लाखों लोगों की आजीविका इस उद्योग से जुड़ी हुई थी। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियाँ भी बंगाल के वस्त्रों को खरीदने के लिए प्रतिस्पर्धा करती थीं। अंग्रेज, फ्रांसीसी, डच और पुर्तगाली व्यापारी ढाका की मलमल प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते थे। इतिहासकारों के अनुसार अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में बंगाल की आर्थिक समृद्धि इतनी अधिक थी कि उसे एशिया का सबसे सम्पन्न क्षेत्र माना जाता था।

अंग्रेजी नीतियों का प्रभाव

सन् १८५७ के प्लासी युद्ध और सन् १७६४ के बक्सर युद्ध के बाद बंगाल की परिस्थितियाँ तेजी से बदलने लगीं। ईस्ट इंडिया कंपनी ने केवल राजनीतिक नियंत्रण ही प्राप्त नहीं किया; उसने बंगाल की आर्थिक संरचना पर भी अधिकार स्थापित कर लिया। अब कंपनी का उद्देश्य भारतीय वस्त्र उद्योग को विकसित करना नहीं था, बल्कि उसे अपने औपनिवेशिक हितों के अनुरूप नियंत्रित करना था। कंपनी के अधिकारियों ने बुनकरों को बाध्यकारी अनुबंधों में बाँधना शुरू किया। उन्हें अग्रिम धन देकर केवल कंपनी के लिए उत्पादन करने के लिए विवश किया गया। उन्हें स्वतंत्र व्यापार की अनुमति नहीं थी। उन्हें अपने वस्त्र अत्यंत कम कीमतों पर बेचने पड़ते थे और यदि कोई बुनकर विरोध करता, तो उसे आर्थिक तथा प्रशासनिक दबावों का सामना करना पड़ता। इस प्रकार ढाका के बुनकर धीरे-धीरे स्वतंत्र उत्पादक से कंपनी के नियंत्रित श्रमिक बनते चले गए।

मलमल उद्योग का पतन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक औद्योगिक क्रांति के प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगे थे। इंग्लैंड के मैनचेस्टर और लैंकाशायर की मिलों में मशीनों द्वारा बड़े पैमाने पर कपड़ा तैयार किया जाने लगा। ब्रिटिश सरकार और ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय बाजारों को ब्रिटिश कपड़ों के लिए खोल दिया।

भारत से कच्चा कपास सस्ते दामों पर इंग्लैंड भेजा जाता था ।

वहाँ मशीनों से कपड़ा तैयार होता था । और फिर वही कपड़ा भारत में बेचा जाता था ।

इस असमान प्रतिस्पर्धा में भारतीय हस्तकरघा उद्योग कमजोर पड़ने लगा ।

ढाका की मलमल, जिसकी प्रसिद्धि कभी विश्वभर में थी, धीरे-धीरे बाजार से बाहर होने लगी ।

मशीन निर्मित वस्त्र सस्ते थे ।

उनका उत्पादन अधिक था और उन्हें औपनिवेशिक शासन का संरक्षण प्राप्त था । परिणामस्वरूप मलमल उद्योग का आधार ही कमजोर होने लगा । बुनकर परिवारों की वास्तविक स्थिति ढाका के बुनकरों की स्थिति दिन-प्रतिदिन खराब होती गई ।

जो परिवार कभी सम्मानजनक जीवन व्यतीत करते थे, वे आर्थिक संकट में फँसने लगे ।

कई परिवारों को अपना व्यवसाय छोड़ना पड़ा ।

कुछ कृषि मजदूर बन गए ।

कुछ ने छोटे-मोटे काम शुरू किए ।

कुछ निर्धनता और कर्ज के बोझ तले दब गए ।

अनेक ऐतिहासिक विवरणों में उल्लेख मिलता है कि बुनकर परिवारों को जीवनयापन के लिए संघर्ष करना पड़ता था । जिन हाथों की कला की कभी दुनिया प्रशंसा करती थी, वही हाथ अब जीविका के लिए संघर्ष कर रहे थे ।

यह केवल आर्थिक संकट नहीं था । यह सांस्कृतिक और मानवीय त्रासदी भी थी । क्योंकि प्रत्येक बंद करघे के साथ एक परिवार का इतिहास, एक पीढ़ी का कौशल और एक सांस्कृतिक परंपरा भी संकट में पड़ रही थी । ढाका की गलियों



का बदलता दृश्य कभी जिन गलियों में करघों की निरंतर ध्वनि सुनाई देती थी, वहाँ धीरे-धीरे सन्नाटा फैलने लगा। जहाँ कभी मलमल तैयार होती थी, वहाँ उत्पादन कम होने लगा। जहाँ कभी व्यापारी दूर-दूर से आते थे, वहाँ व्यापार घटने लगा।

ढाका का आर्थिक जीवन बदल रहा था और इस परिवर्तन का सबसे बड़ा भार बुनकरों को उठाना पड़ रहा था। एक समय जो नगर विश्व के वस्त्र व्यापार का केंद्र था, वह धीरे-धीरे अपनी पहचान खोने लगा।

विश्व व्यापार से विस्थापन ढाका की मलमल का पतन केवल स्थानीय उद्योग का पतन नहीं था; यह भारत के विश्व व्यापार से क्रमिक विस्थापन की भी कहानी थी। अठारहवीं शताब्दी में भारत विश्व के प्रमुख वस्त्र निर्यातकों में से एक था। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी तक स्थिति बदल गई। भारत तैयार वस्त्रों का निर्यातक नहीं, बल्कि विदेशी वस्त्रों का उपभोक्ता बनने लगा।

ब्रिटिश उद्योगों ने वैश्विक बाजार पर कब्जा कर लिया।

भारतीय उत्पाद धीरे-धीरे पीछे छूटने लगे।

ढाका मलमल इसका सबसे बड़ा उदाहरण थी।

जिस वस्त्र ने कभी विश्व बाजारों पर अपना प्रभाव स्थापित किया था, वह औपनिवेशिक नीतियों और औद्योगिक प्रतिस्पर्धा के कारण हाशिए पर पहुँच गई।

इतिहास की एक मौन त्रासदी ढाका मलमल का पतन केवल आर्थिक आँकड़ों का विषय नहीं है। यह उन लाखों श्रमशील हाथों की कहानी है जिन्होंने अपने कौशल से विश्व को चमत्कृत किया, लेकिन औपनिवेशिक व्यवस्था के कारण सम्मानजनक जीवन से वंचित हो गए। यह इतिहास हमें यह भी सिखाता है कि किसी राष्ट्र की आर्थिक शक्ति केवल उत्पादन से नहीं बनती; उसे संरक्षण, न्यायपूर्ण नीतियों और श्रम के सम्मान की भी आवश्यकता होती है। जब ये तत्व समाप्त हो जाते हैं, तब सबसे महान उद्योग भी संकट में पड़ सकते हैं। ढाका की मलमल भारतीय बुनकरों की प्रतिभा, धैर्य और कलात्मक उत्कृष्टता का सर्वोच्च उदाहरण थी। उसका पतन भारतीय इतिहास की सबसे मार्मिक आर्थिक त्रासदियों में से एक है।

यह केवल एक उद्योग का पतन नहीं था ।

यह लाखों बुनकर परिवारों के सपनों का पतन था ।

यह श्रम के सम्मान पर पड़ा आघात था ।

यह भारत की आर्थिक आत्मनिर्भरता को कमजोर करने वाली औपनिवेशिक नीति का परिणाम था ।

फिर भी ढाका की मलमल आज भी इतिहास के पन्नों में जीवित है । वह हमें स्मरण कराती है कि भारतीय बुनकर केवल वस्त्र निर्माता नहीं थे; वे एक महान सभ्यता के सांस्कृतिक शिल्पकार थे ।

ढाका की मलमल भले ही बाजारों से विलुप्त हो गई हो, लेकिन उसके धागों में बुना भारतीय बुनकरों का कौशल, संघर्ष और स्वाभिमान आज भी इतिहास में अमर है ।

बुनकर इतिहास की दो करुण स्मृतियाँ इतिहास केवल बड़े युद्धों, राजाओं और साम्राज्यों की कथा नहीं होता; कभी-कभी वह उन छोटी-छोटी घटनाओं को भी स्मरण रखता है, जो किसी युग की मानसिकता और सत्ता के चरित्र को उजागर करती हैं । कहा जाता है कि किसी अधिकारी द्वारा एक नन्ही चिड़िया को मारने जैसी घटना भी इतिहास के पन्नों में दर्ज हो जाती है, क्योंकि वह केवल एक पक्षी की मृत्यु नहीं होती, बल्कि शक्ति और संवेदनहीनता का प्रतीक बन जाती है । किन्तु जब हम भारतीय बुनकरों के इतिहास को देखते हैं, तब प्रश्न उठता है कि जिन लाखों श्रमशील हाथों की आजीविका छीन ली गई, जिनके करघे मौन कर दिए गए, जिनकी कला को योजनाबद्ध रूप से नष्ट किया गया और जिनके परिवार निर्धनता तथा अपमान के अंधकार में धकेल दिए गए-क्या उनकी पीड़ा इतिहास में उतनी ही स्पष्टता से दर्ज हुई ? एक चिड़िया की मृत्यु पर इतिहास संवेदना व्यक्त करता है, और करना भी चाहिए; परन्तु भारतीय बुनकरों की करुण गाथा तो लाखों जीवित मनुष्यों की वेदना की कहानी है ।



वे लोग, जिनकी उँगलियाँ धागों में रंग भरती थीं ।

वे लोग, जिनके करघों की टक-टक भारत की समृद्धि का संगीत थी ।

वे लोग, जिनकी कला ने भारत को विश्वभर में गौरव दिलाया ।

औपनिवेशिक नीतियों ने उन्हीं लोगों को निर्धनता, कर्ज, अपमान और असुरक्षा की ओर धकेल दिया ।

यदि एक चिड़िया का मौन इतिहास में दर्ज हो सकता है, तो भारतीय बुनकरों के मौन करघों की आवाज़ भी इतिहास के पन्नों में स्थान पाने की अधिकारी है ।

क्योंकि वह केवल एक समुदाय की पीड़ा नहीं थी; वह भारत की उत्पादन शक्ति, सांस्कृतिक विरासत और श्रम की गरिमा पर किया गया आघात था ।

“इतिहास ने कभी-कभी एक चिड़िया की मृत्यु को भी याद रखा है;

फिर भारतीय बुनकरों के मौन होते करघों, टूटते परिवारों और बिखरते स्वाभिमान को कैसे भुलाया जा सकता है ?”

भारतीय बुनकरों का संघर्ष हमें यह सिखाता है कि सभ्यता की पहचान केवल उसके शासकों से नहीं होती; वह उन श्रमशील हाथों से भी होती है, जो चुपचाप राष्ट्र की समृद्धि बुनते हैं ।

"जिस राष्ट्र के करघे जीवित रहते हैं,
उसकी संस्कृति कभी पराजित नहीं होती ।"

"बुनकर की उँगलियाँ इतिहास नहीं पढ़तीं,
वे इतिहास रचती हैं ।"

नाथु सोसा

प्रकरण 13

गुजरात के बुनकरों का इतिहास

गुजरात की धरती पर बुनाई का इतिहास अत्यन्त प्राचीन और गौरवशाली है। यहाँ के बुनकरों ने अपनी कला,

परिश्रम और कौशल से न केवल भारत बल्कि संपूर्ण विश्व में ख्याति प्राप्त की। लेकिन औपनिवेशिक

शासन की नीतियों ने उनके समृद्ध जीवन को संघर्ष, शोषण और पतन की ओर धकेल दिया।

फिर भी इनके साहस, स्वाभिमान और परंपरा ने स्वतंत्रता की चेतना को बल दिया।

गुजरात - वस्त्र परंपरा की भूमि

- प्राचीन काल से ही गुजरात वस्त्र निर्माण का प्रमुख केन्द्र रहा है।
- सिंधु घाटी सभ्यता के सोधल (गुजरात) से सूती कपड़े के प्रमाण मिलते हैं।
- यहाँ कपास की खेती, सूत कातना, रंगाई-छपाई और बुनाई की समृद्ध परंपरा रही है।
- "वस्त्रापुर उद्योग", "पटोला", "बांधनी" "अजल", "मयूर" जैसे विशिष्ट वस्त्रों ने विश्व में गुजरात को पहचान दिलाई।

प्राचीन और मध्यकालीन गौरव

- चातुर्व्य, सोतोंकी, वाघेला और मुगल काल में गुजरात के वस्त्रों की बड़ी माँग थी।
- अहमदाबाद, पाटन, खंभात, सूरत, भरुच, भावनगर जैसे नगर वस्त्र निर्माण और व्यापार के केंद्र बने।
- पटोला (पाटन), बांधनी (जामनगर, भुज), अजल (कच्छ, सोराष्ट्र) और महीन सूती कपड़े दूर-दूर तक निर्यात होते थे।

औपनिवेशिक काल में पतन की कहानी



ब्रिटिश व्यापारियों ने भारत से सस्ते कच्चे माल (कपास) का निर्यात बढ़ाया।



इंग्लैंड के मशीन निर्मित कपड़ों ने भारतीय बाज़ारों में बाढ़ ला दी।



भारतीय बुनकरों पर अत्याधिक कर, लगान और प्रतिबंध लगाए गए।



हज़ारों बुनकरों के करघे बंद हो गए, रोज़गार छीन गया, गरीबी बढ़ी।



कला, कौशल और स्वाभिमान को गहरा आघात पहुंचा।

प्रतिकार संघर्ष और योगदान

- गुजरात के बुनकरों ने अन्यायपूर्ण नीतियों का शांतिपूर्ण प्रतिरोध किया।
- स्वदेशी आंदोलन में उन्होंने विदेशी कपड़ों का बहिष्कार कर खादी और स्वदेशी वस्त्रों को अपनाया।
- अनेक बुनकरों ने राष्ट्रीय आंदोलन का साथ दिया और जेल यात्राएँ कीं।
- उनके करघों की 'टिक-टिक' स्वतंत्रता की चेतना का स्वर बनी।



प्रमुख बुनकर समुदाय

अंसारि (मुस्लिम बुनकर)
कोरी / महेस्वरी
साली
वणकर / वांकर
मोची (कुछ क्षेत्रों में)
जुलाहा समुदाय



इन समुदायों ने पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी कला को संभाला और गुजरात की सांस्कृतिक पहचान को समृद्ध किया।

प्रमुख केंद्र और उनकी विशेषताएँ

पाटन	पटोला - विश्वप्रसिद्ध डबल इकट बुनाई
अहमदाबाद	महीन सूती, जामदानी, किमखाव
सूरत	बारीक सूती, रेशमी, ज़रीदार कपड़े
खंभात (कांबे)	छपाई (ब्लॉक प्रिंट), निर्यात का प्रमुख केंद्र
कच्छ (गुज, अजलपुरा)	अजल छपाई, बांधनी, ऊनि वस्त्र
जामनगर	बांधनी, पटोला की परंपरा
भावनगर	सादी सूती, पारम्परिक वस्त्र

सामाजिक और आर्थिक प्रभाव

- बुनकरों की आर्थिक स्थिति दरगियों हुई।
- कर्ज़ के बोझ और विचित्रियों के शोषण ने उन्हें तोड़ दिया।
- अनेक परिवार कृषि मज़दूर, रिक्शा चालक, दिहाड़ी, मज़दूर बनने को मजबूर हुए।
- शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाओं से वे वंचित रहे।
- फिर भी उन्होंने अपनी संस्कृति, भाषा, कला और स्वाभिमान को जीवित रखा।



अमूल्य धरोहर

गुजरात के बुनकरों की कला आज भी भारत की अमूल्य धरोहर है। उनके हाथों की बुनाई में सृजन, संवेदना और संस्कृति की झलक मिलती है।



आज की प्रासंगिकता

- आज हस्तकरघा और हैंडसूम उद्योग को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।
- बुनकरों को उचित मूल्य, ऋण, बाज़ार और आधुनिक सुविधाएँ मिलनी चाहिए।
- 'वोकल फॉर लोकल' और 'मेक इन इंडिया' में गुजरात के बुनकरों की बड़ी भूमिका हो सकती है।
- उनकी परंपरा को सम्मान देना, उनके जीवन को सम्मान देना है।



प्रेरक संदेश

गुजरात के बुनकरों का इतिहास दर्द भी है, संघर्ष भी है, पर यह स्वाभिमान, कला और स्वतंत्रता चेतना की अमर गाथा भी है।



करघे की 'टक-टक' केवल धागों को नहीं, इतिहास को बुनती है
- यह गुजरात के बुनकरों की अमर कहानी है।

१३. गुजरात के बुनकरों का इतिहास

परंपरा श्रम, समृद्धि और स्वाभिमान की संस्कृति, राजस्थान के बुनकर समाज, उनके संघर्ष, खादी परंपरा और स्वतंत्रता चेतना का अध्ययन करने के पश्चात् जब मैं अपने गृहप्रदेश गुजरात की ओर दृष्टि करता हूँ, तो यह अनुभव होता है कि भारत की बुनाई परंपरा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और गौरवशाली अध्याय यहाँ भी जीवित है। यदि बंगाल ने विश्व को मलमल दी, यदि बनारस ने रेशम की अद्भुत कला विकसित की, तो गुजरात ने रंग, डिजाइन, धैर्य और शिल्पकला की ऐसी परंपरा विकसित की जिसने उसे विश्व के श्रेष्ठ वस्त्र केंद्रों में स्थान दिलाया। गुजरात की बुनाई केवल एक उद्योग नहीं रही; यह लोकजीवन, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और सामाजिक संरचना का अभिन्न अंग रही है। यहाँ के गाँवों में करघों की ध्वनि केवल उत्पादन का संकेत नहीं थी, बल्कि श्रम, आत्मनिर्भरता और सामुदायिक समृद्धि की पहचान थी।

यह प्रकरण केवल इतिहास का वर्णन नहीं है। यह मेरे अपने जीवन की स्मृतियों, प्रत्यक्ष अनुभवों, यात्राओं और उन बुनकर परिवारों के साथ हुए संवादों का दस्तावेज भी है, जिनके श्रम ने गुजरात की पहचान को आकार दिया।

पाटण का पटोला, गुजरात की विश्वविख्यात धरोहर गुजरात की बुनाई परंपरा का उल्लेख पटोला के बिना अधूरा है। पाटण का पटोला केवल एक वस्त्र नहीं, बल्कि भारतीय शिल्पकला का अद्वितीय चमत्कार है। पटोला की डबल इकत तकनीक विश्व की सबसे जटिल बुनाई तकनीकों में गिनी जाती है। इसमें ताना और बाना दोनों को पूर्व निर्धारित डिजाइन के अनुसार रंगा जाता है और उसके बाद अत्यंत सावधानी से बुनाई की जाती है। एक उत्कृष्ट पटोला तैयार करने में कई महीनों से लेकर एक वर्ष तक का समय लग सकता है। मेरी यात्राओं के दौरान मुझे पाटण के प्रसिद्ध पटोला शिल्पियों से मिलने का अवसर मिला। विशेष रूप से प्रवीणभाई पटोलावाला जैसे कारीगरों ने इस कला को जीवित रखने के लिए जो समर्पण दिखाया है, वह प्रेरणादायी है। आज भी जब पटोला की बुनाई को निकट से देखा जाता है, तो यह स्पष्ट अनुभव होता है कि यह केवल वस्त्र निर्माण नहीं, बल्कि गणित, कला, धैर्य और साधना का अद्भुत संगम है।

सौराष्ट्र और काठियावाड़, करघों से समृद्ध होता लोकजीवन गुजरात के सौराष्ट्र और काठियावाड़ क्षेत्र में बुनाई की परंपरा सदियों पुरानी रही है ।

एक समय ऐसा था जब गाँव-गाँव में करघे चलते थे ।

घरों में ऊन काती जाती थी ।

महिलाएँ धागे तैयार करती थीं ।

पुरुष करघों पर बैठकर वस्त्र बनाते थे ।

और बच्चे बचपन से ही इस कला को देखते हुए बड़े होते थे ।

यह केवल रोजगार नहीं था; यह जीवन शैली थी ।

यहाँ कम्बल, साफल, पछेड़ी, खादी टॉवेल, ऊनी चादरें और अनेक प्रकार के पारंपरिक वस्त्र बनाए जाते थे ।

इन उत्पादों ने न केवल स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा किया, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूत बनाया । भावनगर, तळजा और महुवा मेरी स्मृतियों का संसार मैं स्वयं भावनगर ज़िले के तळजा तालुका स्थित जूना सांगाणा गाँव का निवासी हूँ ।

इस कारण गुजरात की बुनाई परंपरा मेरे लिए केवल अध्ययन का विषय नहीं, बल्कि जीवन का अनुभव है । बचपन में मैंने अपने परिवार के वरिष्ठजनों को कम्बलो की फेरी करते हुए देखा है । मेरे बड़े पापा गाँव-गाँव जाकर कम्बल बेचते थे । उस समय मुझे यह केवल व्यापार प्रतीत होता था, लेकिन वर्षों बाद समझ में आया कि यह केवल वस्त्रों का व्यापार नहीं था; यह श्रम, विश्वास और आत्मनिर्भरता की परंपरा का विस्तार था ।

महुवा पंथक के अनेक गाँवों में घर-घर ऊन कातने का कार्य होता था ।

महिलाएँ चरखे पर बैठती थीं ।

परिवार मिलकर उत्पादन करते थे ।

गाँवों की अर्थव्यवस्था स्थानीय उत्पादन पर आधारित थी ।

संध्या के समय लोकगीतों के बीच ऊन कातती महिलाओं का दृश्य आज भी मेरी स्मृतियों में जीवित है ।

मांडवा और पनियाली, जीवित परंपराओं की भूमि अपने सहयोगी डी. बी. मारू के साथ मैंने भावनगर ज़िले के अनेक बुनकर गाँवों का विस्तृत अध्ययन किया। मांडवा गाँव में हमारी मुलाकात त्रिकमभाई मारू, राघवभाई मारू, मावजीभाई भाणाभाई मारू तथा बीजलभाई केशवभाई मारू जैसे अनुभवी कारीगरों से हुई। उन्होंने हमें बताया कि उनके परिवार पीढ़ियों से साफल, पछेड़ी, खादी टॉवेल और अन्य पारंपरिक वस्त्रों का निर्माण करते रहे हैं। उनके घरों में रखे करघों को देखकर स्पष्ट अनुभव होता था कि ये केवल उत्पादन के साधन नहीं हैं; ये पीढ़ियों की स्मृतियों और पहचान के प्रतीक हैं। इसी प्रकार पनियाली गाँव में पालजीभाई मावजीभाई अणजारा तथा अरजणभाई अणजारा से विस्तृत चर्चा हुई। ऊनी कम्बलों के निर्माण की उनकी परंपरा ग्रामीण जीवन की उपयोगिता और स्थानीय ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

बगदाणा और सेदरडा, श्रम की अनमोल विरासत मेरे अध्ययन के दौरान बगदाणा और सेदरडा क्षेत्र की यात्रा विशेष रूप से उल्लेखनीय रही। यहाँ देवशीभाई खोडाभाई विरास द्वारा निर्मित कम्बलों की गुणवत्ता और प्रसिद्धि का उल्लेख अनेक लोगों ने किया। उनके द्वारा तैयार किए गए कम्बल केवल उपयोग की वस्तु नहीं थे; वे स्थानीय शिल्पकला की पहचान थे। गाँवों में लोग आज भी उनके कार्य को सम्मान के साथ याद करते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि कारीगर केवल उत्पाद नहीं बनाते; वे समाज की स्मृतियों में अपना स्थान भी बनाते हैं।

गाँव-गाँव में बसी बुनाई की संस्कृति मांडवा और पनियाली ही नहीं, बल्कि हाथप, पडया, गूंदी, कोलियाक, रतनपर, भूँभली, रामपर, थोरडी, खोकहरा, कुकड, भंडारिया, पाडवा, तगडी और वालुकड जैसे अनेक गाँव कभी बुनाई और हस्तबुनाई के महत्वपूर्ण केंद्र रहे हैं।

इन गाँवों में करघे केवल आर्थिक गतिविधि नहीं थे।

वे सामाजिक स्थिरता के आधार थे।

वे स्थानीय रोजगार का स्रोत थे।

वे पारिवारिक एकता के केंद्र थे।

और वे आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ थे।

खादी टॉवेल उद्योग और ग्रामीण समृद्धि

गुजरात के अनेक क्षेत्रों में खादी टॉवेल उद्योग विशेष रूप से विकसित हुआ।



पालनपुर, सौराष्ट्र और भावनगर क्षेत्र के अनेक कारीगर इस उद्योग से जुड़े थे ।

हाथ से बुने गए खादी टॉवेल अपनी गुणवत्ता, टिकाऊपन और उपयोगिता के लिए प्रसिद्ध थे ।

इन उत्पादों की माँग केवल स्थानीय स्तर तक सीमित नहीं थी ।

वे राज्य के विभिन्न भागों तक पहुँचते थे ।

इस उद्योग ने हजारों परिवारों को रोजगार प्रदान किया ।

२० प्रतिशत रिबेट का स्वर्णिम काल एक समय ऐसा भी था जब खादी और ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार द्वारा २० प्रतिशत से अधिक रिबेट (अनुदान) प्रदान किया जाता था ।

उस कालखंड में खादी उत्पादन और बिक्री दोनों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई । कारीगरों को उचित प्रोत्साहन मिला । ग्रामोद्योग संस्थाएँ सक्रिय रहीं और अनेक परिवारों को सम्मानजनक आजीविका प्राप्त हुई ।

ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों का विस्तार हुआ और बुनाई परंपरा को नई ऊर्जा मिली । आज भी अनेक वरिष्ठ बुनकर उस काल को खादी और हस्तकरघा उद्योग का स्वर्णिम युग मानते हैं ।

करसनभाई जादव और समकालीन परंपरा गुजरात में आज भी कुछ समर्पित कारीगर इस परंपरा को जीवित रखने का प्रयास कर रहे हैं । करसनभाई जादव जैसे शिल्पकारों ने पारंपरिक बुनाई को आधुनिक समय में भी जीवित रखा है । उनका कार्य यह प्रमाणित करता है कि यदि समर्पण, कौशल और उचित प्रोत्साहन मिले, तो पारंपरिक शिल्पकला आज भी जीवित रह सकती है ।

परिवर्तन का दौर और नई चुनौतियाँ किन्तु समय के साथ परिस्थितियाँ बदलती गयी । पावरलूम का विस्तार हुआ । मशीन आधारित उत्पादन बढ़ा । नई पीढ़ी शिक्षा और रोजगार के लिए शहरों की ओर बढ़ने लगी । परंपरागत व्यवसायों की आर्थिक व्यवहार्यता कम होने लगी । परिणामस्वरूप अनेक करघे मौन हो गए ।

अनेक परिवारों ने अपने पैतृक व्यवसाय छोड़ दिए । फिर भी गुजरात की बुनाई परंपरा पूरी तरह समाप्त नहीं हुई । आज भी अनेक गाँवों में उसकी स्मृतियाँ

जीवित हैं। आज भी कुछ परिवार इस विरासत को बचाने का प्रयास कर रहे हैं। और आज भी करघों की धीमी लेकिन सतत ध्वनि हमें यह याद दिलाती है कि गुजरात की आत्मा उसके श्रमशील समाज में बसती है।

गुजरात के जिलों में जीवित बुनकर समाज परंपरा एक प्रत्यक्ष अध्ययन के दौरान मुझे केवल भावनगर, तळजा और महुवा क्षेत्र तक सीमित रहने की आवश्यकता नहीं पड़ी। वर्षों तक चली इस अध्ययन यात्रा ने मुझे गुजरात के लगभग सभी जिलों, सैकड़ों गाँवों और अनेक बुनकर परिवारों तक पहुँचाया, जहाँ मुझे उनके जीवन, उनकी कला, उनकी आर्थिक परिस्थितियों, उनके संघर्षों और उनकी सांस्कृतिक विरासत को निकट से समझने का अवसर प्राप्त हुआ। मेरे लिए यह यात्रा केवल शोध का विषय नहीं थी, बल्कि गुजरात के श्रमशील समाज की आत्मा को पहचानने की एक जीवनयात्रा थी। इस अध्ययन के दौरान मैंने सुरेन्द्रनगर, राजकोट, जामनगर, देवभूमि द्वारका, पोरबंदर, जूनागढ़, गिर-सोमनाथ, अमरेली, भावनगर, बोटोद, मोरबी, कच्छ, पाटण, बनासकांठा, साबरकांठा, अरवल्ली, महेसाणा, गांधीनगर, अहमदाबाद, खेड़ा, आनंद, पंचमहाल, दाहोद, वडोदरा, छोटोउदेपुर, भरूच, नर्मदा, सूरत, नवसारी, वलसाड, तापी और डांग सहित गुजरात के लगभग सभी जिलों में निवास करने वाले बुनकर समाज के लोगों से संवाद स्थापित किया। इसके अतिरिक्त गुजरात के लगभग २२५ तालुकाओं में भ्रमण के दौरान मुझे यह अनुभव हुआ कि बुनकर परंपरा केवल एक व्यवसाय नहीं है, बल्कि यह गुजरात की लोकसंस्कृति, ग्रामीण अर्थव्यवस्था और सामाजिक जीवन की धड़कन है।

सुरेन्द्रनगर खादी और हस्तकरघा की जीवित परंपरा: सुरेन्द्रनगर जिला लंबे समय से खादी और हस्तकरघा उत्पादन का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। यहाँ के अनेक गाँवों में आज भी करघों की ध्वनि सुनाई देती है। वरिष्ठ बुनकरों से बातचीत के दौरान मुझे यह अनुभव हुआ कि उनके लिए बुनाई केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि जीवन का मूल्य और आत्मसम्मान का आधार है।

सौराष्ट्र परंपरा और नवाचार का संगम: राजकोट, गोंडल, जेतपुर, उपलेटा और आसपास के क्षेत्रों में मैंने देखा कि किस प्रकार पारंपरिक बुनाई कला आधुनिक बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढालने का प्रयास कर रही है। यहाँ

के कारीगर अपनी परंपरा को बचाए रखते हुए नई पीढ़ी को इस कला से जोड़ने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं ।

जामनगर और पोरबंदर श्रम और समुद्री संस्कृति का मेल: जामनगर और पोरबंदर जिलों के अनेक गाँवों में मुझे ऐसे परिवारों से मिलने का अवसर मिला, जो कई पीढ़ियों से बुनाई कार्य से जुड़े हुए हैं । उनकी श्रमशीलता, अनुशासन और कारीगरी के प्रति समर्पण ने मुझे अत्यंत प्रभावित किया । उनके लिए करघा केवल उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि पूर्वजों की स्मृति, परिवार की पहचान और सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है ।

गिर और सावरकुंडला क्षेत्र जूनागढ़, केशोद, माणावदर, मेंदरडा, वंथली तथा गिर क्षेत्र के अनेक गाँवों में मैंने बुनकर समाज की संघर्षशीलता और जीवटता को निकट से देखा । सावरकुंडला और उसके आसपास के क्षेत्रों में आज भी अनेक परिवार परंपरागत बुनाई और खादी कार्य से जुड़े हुए हैं । वृद्ध कारीगरों से हुई चर्चाओं ने मुझे यह समझाया कि उनके लिए बुनाई केवल व्यवसाय नहीं, बल्कि जीवनदर्शन है ।

कच्छ रंग, रचनात्मकता और वैश्विक पहचान: कच्छ की यात्रा मेरे अध्ययन का अत्यंत महत्वपूर्ण अध्याय रही । भुज, अंजार, मांडवी, भचारु और अन्य क्षेत्रों में वस्त्रकला और बुनाई की जो विविधता दिखाई देती है, वह विश्व स्तर पर गुजरात की पहचान है । कच्छ के कारीगरों ने स्थानीय कला को अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा दिलाई है । उनकी रचनाओं में केवल रंग और डिज़ाइन ही नहीं, बल्कि रेगिस्तान की संस्कृति, लोकजीवन और इतिहास भी जीवित दिखाई देता है । जब मैंने कच्छ के कारीगरों को अपने कार्य में तल्लीन देखा, तब मुझे अनुभव हुआ कि हस्तकला केवल रोजगार नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक संस्कृति है ।

पाटण विश्वप्रसिद्ध पटोला की धरोहर: पाटण की यात्रा के दौरान मुझे विश्वविख्यात पटोला कला को निकट से देखने का अवसर मिला । प्रवीणभाई पटोलावाला जैसे कारीगरों के साथ संवाद ने यह स्पष्ट किया कि पटोला केवल एक वस्त्र नहीं, बल्कि गणित, धैर्य, सौंदर्यबोध, साधना और सृजनशीलता का अद्भुत संगम है ।

- राजस्थान में बुनाई की परंपरा सिंधु-सरस्वती सभ्यता काल तक जाती है।
- नागौर, मंडोर, जालौर, भीनमल जैसे प्राचीन नगर बुनाई के केंद्र रहे।
- मध्यकाल में राजदरबारों का संरक्षण मिला-मेवाड़, मारवाड़, जयपुर, बीकानेर आदि में उत्तम वस्त्र बनाते थे।



राजस्थान के करधों की जीवंत परंपरा इतिहास से वर्तमान तक

राजस्थान की धरा पर करधों की 'टुक-टुक' केवल धागे नहीं बुनती, यह संस्कृति, कला, संघर्ष और स्वाभिमान की कहानी बुनती है। यह परंपरा प्राचीन काल से आज तक जीवित है और बदलते समय के साथ स्वयं को नया रूप देती रही है।

- पाली - पाली का पच्चरंगा और सुषेद मतलम
 - भीलवाड़ा - दरी और ऊनी वस्त्र
 - नागौर - नागौरी चादर और सूती कपड़ा
 - बाड़मेर - अजरख प्रिन्ट, मशरू और ऊनी शॉल
 - जैसलमेर - ऊनी दरी, कालीन
 - जयपुर (अंबर) - जरी, किनारी, राजसी वस्त्र
 - उदयपुर, चित्तौड़ - बंधेज, लहरिया, लुंगड़ी
 - श्रीगंगानगर - खदर और सूती वस्त्र
- इन बुनकर समुदायों में जुलाहा (अंसारी), मुखी/मोची, मेघवाल, सालवी, देवासी, रैका आदि प्रमुख हैं।



इतिहास की यात्रा

प्राचीन काल	मध्यकाल (राजदरबारों का संरक्षण)	अंग्रेजी शासन काल	स्वतंत्रता संग्राम काल	स्वतंत्रता के बाद	वर्तमान काल
हाथ से कलाई - बुनाई, प्राकृतिक रंगों का प्रयोग, स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार वस्त्र निर्माण।	मुगलों व राजपूत शासकों के दरबार में राजसी पोशाक, कीमती बुनावट और कलात्मक डिजाइनों का विकास।	मिल-निर्मित अंग्रेजी कपड़ों के कारण हथकरघा उद्योग को भारी नुकसान, बुनकरों की आर्थिक स्थिति दयनीय हुई।	खादी और स्वदेशी आंदोलन से बुनकरों में नए चेहरे, करघा स्वाभिमान और राष्ट्रवाद का प्रतीक बना।	सहकारी समितियाँ बनीं, सरकारी संस्थाओं ने प्रशिक्षण, डिजाइन और विपणन में सहयोग दिया।	डिजाइन नवाचार, प्राकृतिक रंग, ई-कॉमर्स, जीआई टैग से पहचान, युवा पीढ़ी जुड़ रही है।
					

करधों की विशेषताएँ

- हाथकरघा-पर्यावरण अनुकूल, टिकाऊ, सुन्दर
- प्राकृतिक रंग-हल्दी, कला, नील, अनार, महेंदी, मजीठ आदि का उपयोग पारम्परिक डिजाइन - ज्यामितीय आकृतियाँ, मोगरा, बूटा, बेल-बुटे, बंधेज, लहरिया
- उपयोग-पोशाक, पगड़ी, ओढ़नी, दरी, शॉल, चादर, सजावटी वस्त्र आदि



बुनकर समुदायों का योगदान

इन समुदायों ने कठिन परिश्रम, कौशल और पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान के माध्यम से राजस्थान की पहचान को दुनिया भर में पहुँचाया है



चुनोतियाँ

- मशीन निर्मित कपड़ों से प्रतिस्पर्धा
- कच्चे माल की बढ़ती कीमतें
- युवाओं का इस पेशे से दूर होना
- उचित मूल्य और बाजार की कमी
- डिजाइन और कलाई-बुनाई का अद्यतन तकनीक का अभाव।



सम्भावनाएँ और भविष्य

- पारम्परिक कौशल को आधुनिक डिजाइनों से जोड़ना
- मर्पटन और हैंडलूम क्लस्टरों का विकास
- सरकारी योजनाएँ - प्रधानमंत्री वृहद योजना, हैंडलूम मार्क, जीआई टैग, ई-मार्केट प्लेटफॉर्म
- युवा पीढ़ी को प्रशिक्षण और स्टार्टअप से जोड़ना
- 'वोकल फॉर लोकल' से वैश्विक पहचान



राजस्थान के करधों केवल वस्त्र नहीं बुनते, वे इतिहास, संस्कृति, स्वाभिमान और जीवंत परंपरा बुनते हैं। अतीत की धरोहर, वर्तमान की पहचान और भविष्य की आशा - यही है राजस्थान के करधों की कहानी।



१४. राजस्थान के करघों की जीवित परंपरा इतिहास से वर्तमान तक

भा

रतीय बुनकर समाज का इतिहास केवल वस्त्र निर्माण का इतिहास नहीं है, बल्कि यह भारत की सांस्कृतिक चेतना, लोकजीवन, परंपराओं और श्रम-साधना का इतिहास भी है। भारत के विभिन्न प्रदेशों की तरह राजस्थान भी हस्तकरघा, रंगकारी और पारंपरिक वस्त्रकला की समृद्ध विरासत का धनी रहा है। यहाँ की धरती पर रंग के वल वस्त्रों में नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक आयाम में दिखाई देते हैं।

राजस्थान की यात्रा के दौरान मुझे यह अनुभव हुआ कि इस प्रदेश की बुनाई परंपरा केवल आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि लोकसंस्कृति की जीवित अभिव्यक्ति है। यहाँ के करघों ने सदियों से केवल कपड़ा नहीं बुना, बल्कि लोकविश्वास, सामाजिक जीवन, उत्सव, रीति-रिवाज और सांस्कृतिक पहचान को भी संरक्षित रखा है।

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण करते हुए मुझे सोजत, बिलावास, रेनवाल तथा अन्य अनेक स्थानों को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रत्येक स्थान ने मुझे यह समझाया कि समय बदलने के बावजूद परंपरा की जड़ें आज भी गहरी हैं।

सोजत रंग, श्रम और लोकजीवन की परंपरा, पाली ज़िले की सोजत तहसील राजस्थान की सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण केंद्र रही है। यह क्षेत्र केवल मेहंदी के लिए ही नहीं, बल्कि ग्रामीण हस्तशिल्प और श्रमप्रधान जीवन के लिए भी प्रसिद्ध रहा है।

सोजत में भ्रमण के दौरान यह स्पष्ट हुआ कि यहाँ वस्त्र निर्माण और रंगकारी की परंपरा लंबे समय से स्थानीय समाज का हिस्सा रही है। यहाँ के कारीगरों ने अपने अनुभव, कौशल और धैर्य के माध्यम से पारंपरिक कला को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाया है।

सोजत की गलियों में घूमते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ का प्रत्येक रंग लोकसंस्कृति की किसी न किसी कहानी को अपने भीतर समेटे हुए है। यहाँ श्रम केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि जीवन का मूल्य है।

बिलावास : करघों में जीवित इतिहास

राजस्थान प्रवास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पड़ाव बिलावास गाँव था। इस गाँव में पहुँचकर ऐसा अनुभव हुआ मानो समय आज भी अपनी पारंपरिक गति से चल रहा हो।

यहाँ मुझे एक पारंपरिक हस्तकरघे को निकट से देखने और उसके साथ समय बिताने का अवसर मिला। वर्षों पुराना वह करघा केवल एक उपकरण नहीं था, बल्कि अनेक पीढ़ियों की स्मृतियों का संरक्षक प्रतीत होता था।

बिलावास के बुनकरों से संवाद करते हुए यह स्पष्ट हुआ कि उनके लिए करघा केवल उत्पादन का माध्यम नहीं है। वह उनके पूर्वजों की धरोहर है। वह उनकी पहचान है। वह उनकी सांस्कृतिक स्मृति का हिस्सा है।

एक बुजुर्ग बुनकर ने कहा,

“हमारे पूर्वज हमें धन-दौलत कम दे पाए, लेकिन करघा जरूर दे गए। यही हमारी सबसे बड़ी विरासत है।”

उनके इन शब्दों में बुनकर समाज का आत्मगौरव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

राजस्थान की वस्त्र परंपरा की विशेषताएँ :

राजस्थान की बुनाई परंपरा केवल वस्त्र निर्माण तक सीमित नहीं रही। यहाँ वस्त्रों के माध्यम से सामाजिक पहचान, लोकविश्वास और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का विकास हुआ।

बंधेज, लहरिया, खादी, ऊनी वस्त्र, पारंपरिक साफे, ओढ़नियाँ और विभिन्न प्रकार की हस्तनिर्मित बुनावटें राजस्थान की सांस्कृतिक विविधता को दर्शाती हैं।

यहाँ का प्रत्येक वस्त्र किसी न किसी क्षेत्र, समुदाय या लोकपरंपरा से जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि राजस्थान की वस्त्रकला केवल हस्तशिल्प नहीं, बल्कि सांस्कृतिक धरोहर के रूप में देखी जाती है।

श्रम और संस्कृति का अद्भुत समन्वय

राजस्थान के बुनकर समाज का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यहाँ श्रम और संस्कृति एक-दूसरे से अलग नहीं हैं।

करघा केवल उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन का हिस्सा है।

वस्त्र केवल पहनावे का माध्यम नहीं, बल्कि लोकसंस्कृति का वाहक है।

बुनाई केवल कौशल नहीं, बल्कि पीढ़ियों से संचित ज्ञान की परंपरा है।

यही कारण है कि राजस्थान की बुनकर परंपरा आज भी भारतीय सांस्कृतिक विरासत के महत्वपूर्ण अध्यायों में गिनी जाती है।

राजस्थान की इस यात्रा ने मुझे यह समझाया कि इतिहास केवल स्मारकों में नहीं बसता; वह लोगों के जीवन में भी जीवित रहता है।

यहाँ के करघे हमें बताते हैं कि परंपराएँ केवल पुस्तकों से नहीं बचतीं, बल्कि उन लोगों के कारण जीवित रहती हैं जो उन्हें अपने जीवन का हिस्सा बनाए रखते हैं।

राजस्थान के बुनकरों ने सदियों से श्रम, कौशल और संस्कृति का ऐसा संगम प्रस्तुत किया है, जिसने भारतीय सभ्यता को समृद्ध बनाया है।

उनके करघों की टक-टक आज भी यह संदेश देती है कि समय बदल सकता है, परिस्थितियाँ बदल सकती हैं, लेकिन संस्कृति और श्रम की जड़ें कभी समाप्त नहीं होतीं।

राजस्थान के करघे केवल वस्त्र नहीं बुनते; वे इतिहास, परंपरा और भारतीयता को भी जीवित रखते हैं।

१४.१ विशेष अध्ययन - आलूदाः

आलूदा - स्वतंत्रता, खादी और राष्ट्रध्वज की गौरवगाथा

जहाँ एक बुनकर ने स्वतंत्र भारत के स्वाभिमान को धागों में बुना, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में अनेक ऐसे अध्याय हैं, जिनका महत्व अत्यंत महान होने के बावजूद उन्हें अपेक्षित स्थान नहीं मिल सका। ऐसे ही गौरवपूर्ण अध्यायों में राजस्थान के दौसा जिले स्थित आलूदा गाँव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आलूदा कोई विशाल नगर नहीं है। यह एक साधारण ग्रामीण बस्ती है। किंतु भारत के राष्ट्रीय इतिहास में इसका स्थान अत्यंत सम्माननीय है। क्योंकि उपलब्ध स्थानीय परंपराओं, पारिवारिक स्मृतियों और क्षेत्रीय जनश्रुतियों के अनुसार स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रध्वज के लिए तैयार की गई खादी का संबंध इसी गाँव के बुनकर श्री चौथमल बुनकर से जुड़ा हुआ माना जाता है।

यह तथ्य केवल एक व्यक्ति की उपलब्धि नहीं है; यह सम्पूर्ण भारतीय बुनकर समाज के गौरव, श्रम और राष्ट्रभक्ति का प्रतीक है।

जब करघा राष्ट्रधर्म बन गया वर्ष १९४७ भारत के इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण वर्ष था। सदियों की गुलामी के पश्चात भारत स्वतंत्र होने जा रहा था। पूरा राष्ट्र उत्साह, आशा और आत्मगौरव से भरा हुआ था। स्वतंत्र भारत का राष्ट्रध्वज केवल एक ध्वज नहीं था। वह करोड़ों भारतीयों के संघर्ष, बलिदान और सपनों का प्रतीक था।

ऐसे ऐतिहासिक समय में आलूदा गाँव के बुनकर श्री चौथमलजी ने अपने करघे पर खादी तैयार की। स्थानीय परंपराओं के अनुसार उसी खादी से निर्मित राष्ट्रध्वज को स्वतंत्रता प्राप्ति के ऐतिहासिक अवसर पर भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा लाल किले पर फहराया गया। यदि यह घटना केवल वस्त्र निर्माण के रूप में देखी जाए तो उसका महत्व सीमित रह जाएगा। वास्तव में यह उस भारतीय श्रम-संस्कृति की विजय थी, जिसने विदेशी शासन के समक्ष कभी आत्मसमर्पण नहीं किया। यह उस बुनकर समाज का सम्मान था, जिसने खादी को राष्ट्रवाद का प्रतीक बनाया।

यह उन करघों की विजय थी, जिनकी टक-टक ने स्वदेशी आंदोलन को जन-आंदोलन बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

चौथमल बुनकर एक मौन राष्ट्रनिर्माता,

चौथमलजी किसी राजनीतिक पद पर नहीं थे ।

वे कोई बड़े उद्योगपति नहीं थे ।

वे कोई प्रसिद्ध नेता भी नहीं थे ।

वे एक साधारण बुनकर थे ।

किन्तु इतिहास बार-बार यह सिद्ध करता है कि राष्ट्रों का निर्माण केवल राजनेता नहीं करते; अनेक बार साधारण दिखाई देने वाले श्रमशील लोग भी राष्ट्र की आत्मा को आकार देते हैं । चौथमलजी ने अपने करघे पर बैठकर केवल कपड़ा नहीं बुना ।

उन्होंने स्वतंत्र भारत के सम्मान को बुना ।

उन्होंने राष्ट्रध्वज की गरिमा को बुना ।

उन्होंने स्वाभिमान को धागों में पिरोया ।

आज जब तिरंगा आकाश में लहराता है, तब हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि उसके पीछे अनगिनत ज्ञात-अज्ञात बुनकरों का श्रम भी समाहित है ।

आलूदा की यात्रा इतिहास से साक्षात्कार, अलूदा प्रवास के दौरान मुझे चौथमलजी के परिवारजनों तथा ग्रामवासियों से विस्तृत संवाद करने का अवसर प्राप्त हुआ । इस अध्ययन में विशेष रूप से श्रीमती सुमन बैरवा, सुश्री तनु बैरवा, श्रीमती मूली देवी बैरवा, श्री नाथू बैरवा, श्री छोटेलाल बैरवा, श्री कालूराम बैरवा, श्रीमती शंकुतला बैरवा, श्रीमती माया बैरवा, सुश्री राधिका बैरवा, सुश्री काजल बैरवा तथा ग्राम के सरपंच श्री रामसिलाड़ी बैरवा का सहयोग उल्लेखनीय रहा । इन सभी ने चौथमलजी से संबंधित पारिवारिक स्मृतियाँ, स्थानीय परंपराएँ तथा ऐतिहासिक जानकारी साझा



की। उनके सहयोग के बिना इस अध्ययन को पूर्णता प्रदान करना संभव नहीं था। इन परिवारों से बातचीत के दौरान यह स्पष्ट अनुभव हुआ कि उनके लिए चौथमलजी केवल एक पूर्वज नहीं हैं; वे गाँव के गौरव, श्रम-संस्कृति और राष्ट्रीय योगदान के प्रतीक हैं।

बुनकर समाज का राष्ट्रीय योगदान भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की चर्चा प्रायः राजनीतिक घटनाओं तक सीमित रह जाती है, जबकि वास्तविकता यह है कि स्वदेशी आंदोलन, खादी आंदोलन और आर्थिक आत्मनिर्भरता के माध्यम से बुनकर समाज ने स्वतंत्रता संघर्ष में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

जब विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया जा रहा था, तब भारतीय बुनकरों ने खादी तैयार की।

जब राष्ट्र को आत्मनिर्भरता की आवश्यकता थी, तब करघों ने उत्पादन किया।

जब स्वराज का स्वप्न आकार ले रहा था, तब बुनकरों ने उसे वस्त्र का स्वरूप प्रदान किया।

आलूदा की यह गाथा उसी राष्ट्रीय योगदान का जीवंत उदाहरण है। आज भी आलूदा का नाम हमें यह स्मरण कराता है कि भारत का इतिहास केवल राजाओं और युद्धों का इतिहास नहीं है।

यह उन बुनकरों का इतिहास भी है जिन्होंने अपने श्रम से राष्ट्रध्वज को जन्म दिया।

यह उन महिलाओं का इतिहास भी है जिन्होंने सूत तैयार किया।

यह उन परिवारों का इतिहास भी है जिन्होंने राष्ट्रहित को व्यक्तिगत हित से ऊपर रखा।

यह उन करघों का इतिहास भी है जिनकी टक-टक में स्वतंत्र भारत का स्वप्न बुना गया।

“चौथमल बुनकर ने केवल खादी नहीं बुनी; उन्होंने स्वतंत्र भारत के स्वाभिमान को धागों में पिरोया ।”

“लाल किले पर फहराया गया तिरंगा केवल राष्ट्रध्वज नहीं था; वह भारतीय बुनकर समाज के श्रम, त्याग और राष्ट्रभक्ति का जीवंत प्रतीक था ।”

“आलूदा की यह गाथा सम्पूर्ण भारतीय बुनकर समाज की गाथा है, जिसने करघों के माध्यम से राष्ट्रनिर्माण में अमूल्य योगदान दिया ।”

आज आवश्यकता इस बात की है कि चौथमल बुनकर और आलूदा गाँव से जुड़ी इस गौरवगाथा का व्यवस्थित दस्तावेजीकरण किया जाए, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ जान सकें कि स्वतंत्र भारत के स्वाभिमान को आकार देने में बुनकर समाज की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका रही है ।

“भारत के स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास तब तक पूर्ण नहीं माना जा सकता, जब तक उसमें उन बुनकरों का उल्लेख न हो, जिन्होंने अपने करघों पर राष्ट्रध्वज का स्वाभिमान बुना था ।”

“आलूदा की मिट्टी हमें स्मरण कराती है कि राष्ट्र केवल रणभूमि में नहीं बनता; वह करघों, चरखों और श्रमशील हाथों से भी निर्मित होता है ।”

“यदि दिल्ली का लाल किला स्वतंत्रता का प्रतीक है, तो आलूदा का करघा उस स्वतंत्रता के स्वाभिमान का प्रतीक है ।”

“जब करघा चलता है,
तब भारत आत्मनिर्भर बनता है ।”

“धागे कभी जाति नहीं पूछते,
वे केवल जोड़ना जानते हैं ।”

नाथु सोसा

प्रकरण : करघों के बिच बदलता राजस्थान

बुनकर समाज की वर्तमान स्थिति, परिवर्तन और भविष्य की दिशा



अलुदा गाँव (दौसा, राजस्थान) वह पवित्र स्थल है जहाँ चौधमल जी के करघों ने 1947 के प्रथम भारतीय राष्ट्रध्वज के लिए खादी बुनी थी। यह स्थान भारत के बुनकर समाज की अटूट देशभक्ति। श्रम-गरिमा और स्वाभिमान का प्रतीक है। राजस्थान के गाँव-गाँव में करघों की "टक-टक" आज भी इतिहास की धड़कन को जीवित रखे हुए है।



" करघे केवल वस्तु नहीं बुनते - वे संस्कृति, इतिहास, स्वाभिमान और राष्ट्र की आत्मा को जीवित रखते हैं।

बिलावास : करघों में जीवित इतिहास

परंपरा की डोर, पीढ़ियों का गौरव

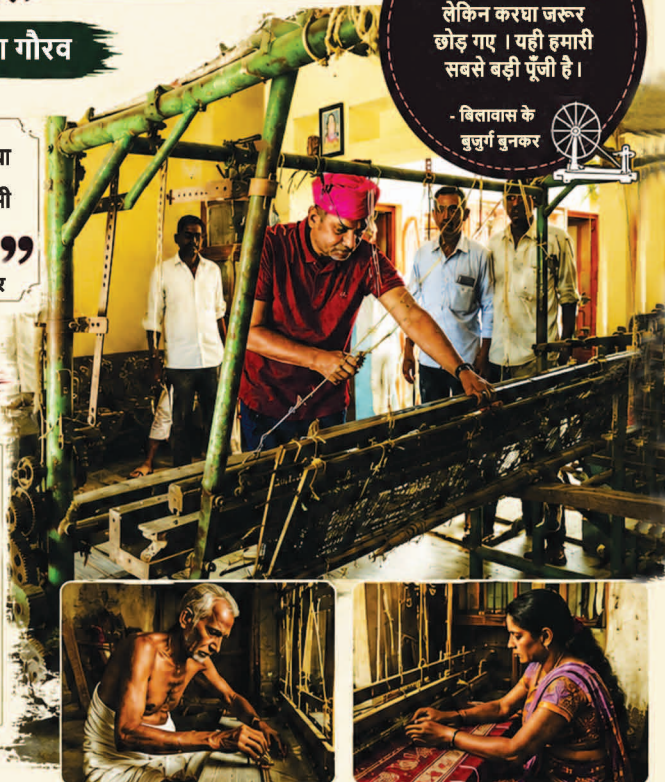
“ यह करघा केवल लकड़ी और लोहे का ढाँचा नहीं, यह हमारी पीढ़ियों की स्मृतियों, संयमी और आत्मगौरव का जीवित प्रतिक है। ”
- बिलावास के बुजुर्ग बुनकर

“ हमारे पूर्वज हमें जमीन कम छोड़कर गए, लेकिन करघा जरूर छोड़ गए। यही हमारी सबसे बड़ी पूँजी है। ”

- बिलावास के बुजुर्ग बुनकर

बिलावास की विशेषताएँ

- पीढ़ियों से बुनाई की समृद्ध परंपरा
- पारम्परिक हस्तकरघे आज भी सक्रिय
- शॉल, दरी, चादर, गमछा और पारम्परिक वस्त्रों की उत्कृष्ट बुनाई
- परिवार के हर सदस्य का योगदान
- संस्कृति, श्रम और आत्मसम्मान का संगम।



करघे की टक-टक में बस्ती है एक पूरी दुनिया



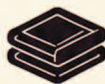
पूर्वजों की धरोहर,
आज की पहचान



हाथों का कौशल
मन का समर्पण



परिवार का सहयोग,
परंपरा का संवहन



हर बुनावट में छिपी है
संस्कृति की कहानी



श्रम, स्वाभिमान और
संस्कृति का संगम

गाँव की झलक, संस्कृति की महक



हमारी आशा

यदि उचित सहयोग, प्रशिक्षण और बाजार मिले, तो बिलावास के करघे फिर से नई ऊँचाईयों को छू सकते हैं। और हमारी आने वाली पीढ़ियाँ इस अमूल्य धरोहर पर गर्व कर सकेंगी।



बिलावास के करघा केवल वस्त्र नहीं बुनते, वे इतिहास, परंपरा और भारतीयता को जीवित रखते हैं।

१४.२ विशेष अध्ययन - राजस्थान प्रवासः राजस्थान के बुनकर परंपरा, संघर्ष और जीवित संस्कृति का साक्षात्कार

राजस्थान के बुनकर परंपरा, संघर्ष और जीवित संस्कृति का साक्षात्कार एक शोधयात्रा जिसने इतिहास को जीवित कर दिया भारतीय बुनकर समाज के इतिहास का अध्ययन करते हुए मेरे मन में बार-बार यह प्रश्न उठता था कि जिन बुनकरों ने सदियों तक भारत की सांस्कृतिक पहचान को आकार दिया, उनकी वर्तमान स्थिति क्या है ? क्या उनकी कला आज भी जीवित है ? क्या उनके करघों की टक-टक अब भी सुनाई देती है ?

इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए मैंने राजस्थान की यात्रा की ।

यह यात्रा केवल एक शोधयात्रा नहीं थी; यह भारतीय श्रम-संस्कृति, लोकजीवन और हस्तकरघा परंपरा के जीवित इतिहास से साक्षात्कार की यात्रा थी ।

जयपुर पहुँचने के पश्चात मेरे मित्र प्रोफेसर देवाराम मेघवाल के सहयोग से मुझे राजस्थान के विभिन्न बुनकर परिवारों और हस्तकरघा केंद्रों तक पहुँचने का अवसर मिला । वहाँ पहुँचकर मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो मैं इतिहास की किसी जीवित पुस्तक के बीच खड़ा हूँ ।

बिलावास जहाँ करघे अभी भी साँस लेते हैं राजस्थान के बिलावास गाँव में पहुँचते ही मेरी मुलाकात अनेक बुनकर परिवारों से हुई ।

उनके घरों में प्रवेश करते ही करघों की लयबद्ध ध्वनि सुनाई दे रही थी । यह केवल मशीन की आवाज़ नहीं थी । यह पीढ़ियों से चल रही एक जीवित परंपरा की धड़कन थी ।

गाँव के वरिष्ठ बुनकर श्री मुरारामजी से मेरी विस्तृत चर्चा हुई ।

उन्होंने मुझे बताया कि उनके पूर्वज कई पीढ़ियों से बुनाई का कार्य करते आए हैं। पहले पूरा कार्य हाथों से होता था। सूत तैयार करना, रंगाई करना, धागों को व्यवस्थित करना और कपड़ा बुनना-सभी कार्य परिवार के सदस्य मिलकर करते थे।

उन्होंने अपने पुराने करघे की ओर संकेत करते हुए कहा,

“यह केवल लकड़ी का ढाँचा नहीं है; यही हमारे परिवार की पहचान है।”

उनकी आँखों में अपनी कला के प्रति गर्व स्पष्ट दिखाई देता था।

हाथों की कला, जो मशीन नहीं बना सकती

बिलावास के बुनकरों ने मुझे शॉल, दरी, चादर और अन्य हस्तनिर्मित वस्त्र दिखाए।

उन वस्त्रों को देखकर मुझे यह अनुभव हुआ कि हस्तकरघा केवल उत्पादन का साधन नहीं है; यह एक कला है।

हर डिजाइन के पीछे एक कहानी थी।

हर रंग के पीछे एक परंपरा थी।

हर धागे के पीछे किसी परिवार का श्रम था।

आज भी अनेक बुनकर हाथ से तैयार किए गए धागों और पारंपरिक रंगों का उपयोग करते हैं।

यद्यपि आधुनिक मशीनें बाजार पर हावी हो चुकी हैं, फिर भी राजस्थान के अनेक बुनकर अपनी पारंपरिक तकनीकों को बचाए रखने का प्रयास कर रहे हैं।

सरकारी योजनाएँ और वास्तविक स्थिति

राजस्थान के बुनकरों के साथ चर्चा के दौरान एक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आया।



कई बुनकरों ने बताया कि पहले सरकार की ओर से हस्तकरघा उद्योग को कुछ सहायता प्राप्त होती थी ।

हस्तकरघा मेलों में भाग लेने की सुविधा मिलती थी ।

प्रदर्शनियों में उत्पादों को प्रदर्शित करने का अवसर मिलता था ।

किन्तु वर्तमान समय में अनेक बुनकरों का अनुभव है कि सहायता की पहुँच पहले जैसी प्रभावी नहीं रही है ।

यह स्थिति केवल राजस्थान तक सीमित नहीं है ।

भारत के अनेक हस्तकरघा क्षेत्रों में बुनकर इसी प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रहे हैं ।

राजस्थान की बुनाई परंपरा हजारों वर्षों की विरासत

राजस्थान का बुनाई इतिहास अत्यंत प्राचीन है ।

प्राचीन सभ्यताओं से लेकर राजपूत काल, मुगल काल और आधुनिक युग तक यहाँ वस्त्र निर्माण की समृद्ध परंपरा विकसित हुई ।

राजस्थान के बुनकरों ने बंधेज, लहरिया, दरी, शॉल, सूती वस्त्र और सजावटी कपड़ों की अनेक विशिष्ट शैलियों को विकसित किया ।

जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर और बाड़मेर जैसे क्षेत्रों ने इस परंपरा को विशेष पहचान दी ।

आज भी इन क्षेत्रों के रंग, डिजाइन और बुनाई शैली विश्वभर में प्रसिद्ध हैं ।

बुनकर समुदाय : विविधता में एकता

राजस्थान में विभिन्न समुदायों ने बुनाई परंपरा को आगे बढ़ाया है ।

जुलाहा, मेघवाल, सलेमपुरिया तथा अन्य अनेक समुदायों ने अपनी विशिष्ट तकनीकों और डिजाइनों के माध्यम से इस परंपरा को जीवित रखा है ।

इन समुदायों की कला केवल आर्थिक गतिविधि नहीं है ।

यह सामाजिक पहचान भी है ।

यह सांस्कृतिक अभिव्यक्ति भी है ।

यह पीढ़ियों से संचित ज्ञान की धरोहर भी है ।

संकट और संभावनाएँ, राजस्थान के बुनकरों ने मुझे बताया कि आज सबसे बड़ी चुनौती मशीन आधारित उत्पादन है ।

मशीनें कम समय में अधिक उत्पादन कर रही हैं ।

सस्ते उत्पाद बाजार में उपलब्ध हैं ।

युवा पीढ़ी वैकल्पिक रोजगारों की ओर बढ़ रही है ।

कच्चे माल की कीमतें बढ़ रही हैं ।

और पारंपरिक कला का मूल्य घटता जा रहा है ।

फिर भी आशा समाप्त नहीं हुई है ।

कई युवा बुनकर सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म का उपयोग कर रहे हैं ।

कुछ लोग अपने उत्पादों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाजार तक पहुँचा रहे हैं ।

कुछ पारंपरिक डिजाइनों को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित कर रहे हैं ।

मेरी अनुभूति, भारत की आत्मा करघों में बसती है राजस्थान प्रवास के दौरान मुझे बार-बार यह अनुभव हुआ कि भारत की वास्तविक शक्ति उसके महानगरों में नहीं, बल्कि ऐसे ही श्रमशील समुदायों में बसती है ।



इन बुनकरों के पास अपार धन नहीं है ।

उनके पास बड़ी फैक्ट्रियाँ नहीं हैं ।

किन्तु उनके पास सदियों से संचित कौशल है ।

उनके पास श्रम का सम्मान है ।

उनके पास संस्कृति को जीवित रखने का अद्भुत धैर्य है ।

मैंने जब उनके हाथों से बने वस्त्रों को देखा, तब मुझे यह अनुभव हुआ कि भारत की संस्कृति केवल पुस्तकों में नहीं रहती ।

वह करघों में रहती है ।

वह धागों में रहती है ।

वह उन हाथों में रहती है जो पीढ़ियों से अपनी कला को जीवित रखे हुए हैं ।

राजस्थान की यह यात्रा मेरे लिए केवल एक अध्ययन नहीं थी ।

यह भारतीय श्रम-संस्कृति के प्रति सम्मान का पाठ थी ।

यह उन लाखों बुनकरों को समझने का प्रयास था, जिन्होंने इतिहास के हर दौर में भारत की सांस्कृतिक पहचान को जीवित रखा ।

आज भी जब किसी गाँव में करघे की टक-टक सुनाई देती है, तब यह विश्वास जागता है कि भारत की आत्मा अभी भी जीवित है ।

“करघे केवल वस्त्र नहीं बुनते; वे इतिहास बुनते हैं ।”

“बुनकर केवल कपड़ा नहीं बनाते; वे सभ्यता को जीवित रखते हैं ।”

“जब तक करघों की टक-टक सुनाई देती रहेगी, तब तक भारत की सांस्कृतिक चेतना भी जीवित रहेगी ।”

प्रकरण 15

महात्मा गांधी और खादी आंदोलन

चरखे से स्वराज तक

“खादी स्वराज का प्रतीक है। यह निर्धन की रक्षा करती है और करोड़ों लोगों को काम देती है। चरखा चलाना ईश्वर की पूजा के समान है।”
- महात्मा गांधी



महात्मा गांधी ने खादी को केवल वस्त्र नहीं, बल्कि स्वावलंबन, स्वदेशी और स्वराज का प्रतीक बनाया। उन्होंने चरखे को हर भारतीय के हाथ में देकर आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक समता और राष्ट्रीय एकता का संदेश दिया। चरखे की घर-घर गूंज ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम को जन-जन का आंदोलन बना दिया।

खादी आंदोलन की पृष्ठभूमि

- अंग्रेजों की औद्योगिक नीति ने भारत के हथकरघा उद्योग को नष्ट कर दिया।
- भारतीय किसान और बुनकर निर्धन और बेरोजगार हो गए।
- गांधीजी ने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और स्वदेशी को अपनाने का आह्वान किया।



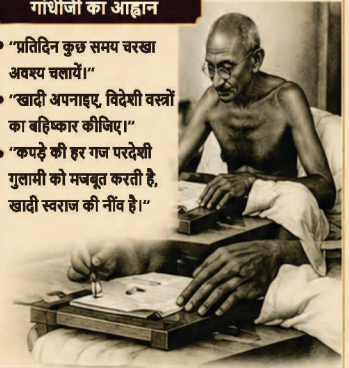
चरखे का चयन क्यों?

- चरखा सस्ता, सरल और हर घर में चलने योग्य था।
- उससे गाँवों में रोजगार मिलता और आत्मनिर्भरता बढ़ती।
- यह अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष सभी के लिए उपयोगी था।
- चरखा लोगों को अनुशासन, धैर्य और एकता सिखाता था।



गांधीजी का आह्वान

- “प्रतिदिन कुछ समय चरखा अवश्य चलायें।”
- “खादी अपनाइए, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कीजिए।”
- “कपड़े की हर गज परदेशी गुलाबी को मजबूत करती है, खादी स्वराज की नींव है।”



खादी आंदोलन के प्रमुख आयाम

- विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और होलीदहन (विदेशी कपड़ों की होली जलाना)
- खादी भंडारों की स्थापना
- चरखा संघ और ओल इंडिया स्पिनर्स एसोसिएशन की स्थापना (1925)।
- खादी को राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय जीवन से जोड़ा गया।



स्त्रियों की भागीदारी

- खादी आंदोलन में महिलाओं ने बड़-बढ़कर भाग लिया।
- उन्होंने चरखा चलाया, सूत काता और खादी को अपनाया।
- यह आंदोलन महिलाओं के आत्मनिर्भरता और सम्मान का माध्यम बना।



गाँव और खादी

- खादी ने गाँवों में रोजगार के अवसर पैदा किये।
- बुनकरों और कर्तियों का जीवन स्तर सुधरा।
- गाँव स्वावलंबी बने और आर्थिक असमानता कम हुई।



स्वतंत्रता संग्राम से संबंध

- खादी आंदोलन ने स्वतंत्रता संग्राम को जन-जन का आंदोलन बना दिया।
- यह असहयोग आंदोलन, नमक सत्याग्रह, भारत छोड़ो आंदोलन आदि का अभिन्न हिस्सा बना।
- खादी पहनना देशभक्ति और त्याग का प्रतीक बन गया।



खादी का महत्त्व



आर्थिक
स्वावलंबन

रोजगार और
प्रगमोदय

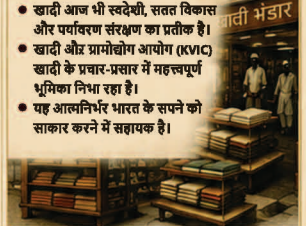
स्वदेशी और
राष्ट्रीय एकता

सामाजिक समता
और समानता

सरल जीवन
वैभव विचार

वर्तमान में खादी

- खादी आज भी स्वदेशी, सरल विकास और पर्यावरण संरक्षण का प्रतीक है।
- खादी और ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) खादी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।
- यह आत्मनिर्भर भारत के सपने को साकार करने में सहायक है।



“चरखा चलाना मेरे लिए प्रार्थना के समान है। यह गरीब की सेवा है, यह स्वराज का मार्ग है।” - महात्मा गांधी



१५. महात्मा गांधी और खादी आंदोलन चरखे से स्वराज तक

आत्मनिर्भर भारत की एक वैचारिक यात्रा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास केवल राजनीतिक आंदोलनों, सत्याग्रहों और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्षों का इतिहास नहीं है। यह उस वैचारिक क्रांति का भी इतिहास है जिसने भारत की जनता को आत्मनिर्भरता, श्रम-सम्मान और स्वदेशी के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इस वैचारिक क्रांति के केंद्र में यदि किसी प्रतीक ने सबसे अधिक प्रभाव डाला, तो वह था। चरखा। महात्मा गांधी ने जब भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व संभाला, तब उन्होंने यह स्पष्ट रूप से समझ लिया था कि राजनीतिक स्वतंत्रता तब तक अधूरी रहेगी, जब तक भारत आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं बनता। उन्होंने देखा कि ब्रिटिश शासन ने केवल भारत की राजनीतिक सत्ता पर ही नहीं, बल्कि उसकी आर्थिक व्यवस्था पर भी नियंत्रण स्थापित कर लिया है। भारतीय किसान निर्धन हो रहे थे, कुटीर उद्योग नष्ट हो रहे थे, बुनकर बेरोजगार हो रहे थे और विदेशी वस्त्र भारतीय बाजारों पर छा चुके थे। ऐसी परिस्थिति में गांधीजी ने चरखे और खादी को केवल वस्त्र निर्माण का साधन नहीं, बल्कि राष्ट्रीय पुनर्जागरण का माध्यम बनाया। चरखे का दर्शन गांधीजी के लिए चरखा केवल लकड़ी का एक उपकरण नहीं था।

वह एक विचार था।

वह एक आंदोलन था।

वह आर्थिक स्वतंत्रता का प्रतीक था।

वह श्रम की गरिमा का संदेश था।

गांधीजी का मानना था कि भारत की शक्ति उसके गाँवों में बसती है। यदि गाँव आत्मनिर्भर होंगे, तो राष्ट्र आत्मनिर्भर होगा। यदि ग्रामीण उद्योग जीवित रहेंगे, तो भारत की आर्थिक स्वतंत्रता सुरक्षित रहेगी।

चरखा इसी दर्शन का केंद्र था ।

चरखा व्यक्ति को श्रम से जोड़ता था ।

चरखा आत्मसम्मान सिखाता था ।

चरखा उत्पादन और उपभोग के बीच संबंध स्थापित करता था ।

गांधीजी स्वयं प्रतिदिन चरखा चलाते थे । उन्होंने चरखे को केवल आर्थिक साधन नहीं, बल्कि आत्मअनुशासन और आत्मनिर्भरता का प्रतीक बना दिया । उनका विश्वास था कि जिस राष्ट्र के नागरिक अपने हाथों से उत्पादन करना सीख जाते हैं, वह राष्ट्र कभी पूर्णतः पराधीन नहीं रह सकता ।

खादी और स्वराज, महात्मा गांधी ने खादी को स्वराज से सीधे जोड़ा । उनके अनुसार स्वराज का अर्थ केवल अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालना नहीं था । स्वराज का वास्तविक अर्थ था । आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक समानता और आत्मनिर्भरता ।

गांधीजी कहते थे,

“खादी केवल वस्त्र नहीं है; यह एक विचार है ।”

खादी भारतीय श्रम का सम्मान थी ।

खादी भारतीय किसान और बुनकर के बीच का संबंध थी ।

खादी गाँव और शहर के बीच की कड़ी थी ।

खादी राष्ट्र की आर्थिक चेतना का प्रतीक थी ।

गांधीजी का मानना था कि यदि प्रत्येक भारतीय खादी धारण करेगा, तो लाखों बुनकरों और कारीगरों को रोजगार मिलेगा । इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत होगी और विदेशी वस्त्रों पर निर्भरता कम होगी ।

इसीलिए खादी आंदोलन स्वतंत्रता आंदोलन का अभिन्न अंग बन गया । विदेशी वस्त्र बहिष्कार गांधीजी ने ब्रिटिश शासन की आर्थिक शक्ति को समझ लिया था । उन्होंने देखा कि भारत से कच्चा कपास इंग्लैंड भेजा जाता है, वहाँ मिलों में कपड़ा तैयार होता है और फिर वही कपड़ा भारत में बेचा जाता है । इस व्यवस्था में भारत केवल कच्चे माल का स्रोत और विदेशी उत्पादों का बाजार बनकर रह गया था । इस स्थिति को बदलने के लिए गांधीजी ने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का आह्वान किया ।

देशभर में विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाई गई ।

लोगों ने विदेशी वस्त्र त्यागने प्रारंभ किए ।

खादी धारण करना राष्ट्रभक्ति का प्रतीक बन गया ।

यह केवल आर्थिक आंदोलन नहीं था ।

यह आत्मसम्मान का आंदोलन था ।

यह स्वदेशी चेतना का आंदोलन था ।

यह ब्रिटिश आर्थिक साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक अहिंसक प्रतिरोध था । भारतीय बुनकरों के लिए यह आंदोलन आशा की नई किरण लेकर आया । सदियों से संघर्ष कर रहे करघों को पहली बार राष्ट्रीय आंदोलन के केंद्र में स्थान मिला ।

ग्रामोद्योग, गाँवों की अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण गांधीजी का विश्वास था कि भारत का भविष्य उसके गाँवों में निहित है । उन्होंने ग्रामोद्योगों को केवल रोजगार का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण का आधार माना । उनके अनुसार गाँवों को आत्मनिर्भर बनाना आवश्यक था । इसलिए उन्होंने केवल खादी ही नहीं, बल्कि अनेक ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहित किया,

सूत कताई

हस्तकरघा बुनाई

तेल घानी

मधुमक्खी पालन

हस्तशिल्प

कुटीर उद्योग

गांधीजी चाहते थे कि ग्रामीण समाज उत्पादन का केंद्र बने ।

वे मानते थे कि बड़े उद्योगों की अपनी भूमिका है, किन्तु भारत जैसे विशाल ग्रामीण देश में कुटीर उद्योगों की उपेक्षा नहीं की जा सकती । उनका ग्रामोद्योग दर्शन केवल आर्थिक नीति नहीं था; वह सामाजिक न्याय और रोजगार का भी माध्यम था । खादी और बुनकर समाज महात्मा गांधी के खादी आंदोलन ने भारतीय बुनकर समाज को नई पहचान प्रदान की । जो बुनकर औपनिवेशिक नीतियों के कारण आर्थिक संकट का सामना कर रहे थे, उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन में सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ । चरखा और करघा स्वतंत्रता संघर्ष के प्रतीक बन गए । बुनकर केवल वस्त्र निर्माता नहीं रहे; वे राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया के सहभागी बन गए । गांधीजी ने यह स्पष्ट किया कि भारत की स्वतंत्रता का मार्ग गाँवों, किसानों और बुनकरों से होकर जाता है । यह विचार भारतीय बुनकरों के आत्मसम्मान के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था ।

आत्मनिर्भर भारत का विचार

आज “आत्मनिर्भर भारत” एक समकालीन राष्ट्रीय विचार के रूप में चर्चा में है, किन्तु इसकी जड़ें भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और गांधीजी के स्वदेशी दर्शन में निहित हैं ।

गांधीजी का आत्मनिर्भर भारत निम्न आधारों पर आधारित था,
स्थानीय उत्पादन
स्थानीय रोजगार
स्वदेशी उद्योग
श्रम का सम्मान
ग्राम स्वावलंबन

उनका मानना था कि कोई भी राष्ट्र तब तक वास्तविक रूप से स्वतंत्र नहीं हो सकता, जब तक उसकी अर्थव्यवस्था अपने लोगों की क्षमता और श्रम पर आधारित न हो ।

चरखा इसी आत्मनिर्भरता का प्रतीक था ।

खादी इसी आत्मनिर्भरता का वस्त्र थी ।

और ग्रामोद्योग इसी आत्मनिर्भरता की आर्थिक संरचना थे ।

भारतीय बुनकरों के संघर्ष से गांधीजी का संबंध यदि हम भारतीय बुनकरों के इतिहास को देखें, तो स्पष्ट होता है कि गांधीजी का खादी आंदोलन अचानक उत्पन्न नहीं हुआ था ।

उसके पीछे लगभग डेढ़ सौ वर्षों का संघर्ष था ।

वह संघर्ष बंगाल के मलमल बुनकरों का था ।

वह संघर्ष गुजरात, राजस्थान और उत्तर भारत के हस्तकरघा परिवारों का था ।

वह संघर्ष उन लाखों कारीगरों का था, जिन्होंने औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का सामना किया । गांधीजी ने उस संघर्ष को राष्ट्रीय स्वर दिया । उन्होंने बुनकरों की पीड़ा को स्वतंत्रता आंदोलन का विषय बनाया ।

और उन्होंने चरखे को राष्ट्र की चेतना का प्रतीक बना दिया ।

महात्मा गांधी और खादी आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक ऐसा अध्याय है, जिसने राजनीति को अर्थव्यवस्था से, स्वतंत्रता को आत्मनिर्भरता से और राष्ट्रवाद को श्रम-सम्मान से जोड़ दिया ।

चरखा केवल एक उपकरण नहीं था ।

वह प्रतिरोध था ।

वह स्वदेशी था ।

वह आत्मसम्मान था ।

वह स्वतंत्रता का प्रतीक था ।

खादी केवल वस्त्र नहीं थी ।

वह भारतीय किसान और बुनकर के श्रम का सम्मान थी ।

वह आत्मनिर्भर भारत का स्वप्न थी ।

वह राष्ट्रनिर्माण की आधारशिला थी ।

जब गांधीजी ने चरखा चलाया, तब उन्होंने केवल सूत नहीं काता; उन्होंने भारतीय आत्मनिर्भरता, स्वदेशी चेतना और स्वतंत्रता के स्वप्न को भी बुना । खादी के प्रत्येक धागे में भारतीय किसान का श्रम, बुनकर का कौशल और स्वतंत्रता सेनानियों का स्वाभिमान समाहित है ।

"भारतीय बुनकर ने संसार को वस्त्र दिए,
और भारत को सम्मान ।"

नाथु सोसा



प्रकरण 16

डॉ. भीमराव अंबेडकर

और श्रम की गरिमा

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने कहा कि समाज की उन्नति का आधार श्रम है। जिस समाज में श्रमिकों का सम्मान नहीं होता, वह समाज न्यायपूर्ण नहीं हो सकता। उन्होंने श्रम को पूजा के समान मानते हुए कहा: “शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो” – यह संघर्ष केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और मानवीय गरिमा के लिए भी था।

‘मैं उस धर्म को मानता हूँ जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व सिखाता है। श्रम के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है। श्रम की अवहेलना, मानव की अवहेलना है।’

- डॉ. भीमराव अंबेडकर



1. श्रम की गरिमा पर अंबेडकर का दृष्टिकोण

- अंबेडकरजी ने कहा: कोई भी काम छोटा नहीं होता, छोटा होता है उसे करने वाला समाज जाने वाला मन।
- उन्होंने ‘श्रम’ को समाज की नींव बताया। वे मानते थे कि जाति व्यवस्था ने श्रम को अपमानित किया और श्रमियों को नीचा दिखाया
- उन्होंने श्रम को सम्मान देने के लिए सामाजिक और कानूनी संघर्ष किया।



2. पुस्तक “शूद्र कौन थे?” और श्रम का प्रश्न

- इस पुस्तक में अंबेडकरजी ने बताया कि प्राचीन भारत में श्रम करने वाले समुदायों को जानबुझकर नीचा दिखाया गया।
- उन्होंने इतिहास के माध्यम से सिद्ध किया कि सामाजिक विषमता श्रम-विभाजन पर आधारित अन्यायपूर्ण व्यवस्था थी, न कि किसी की जन्मजात हीनता पर।



3. आर्थिक न्याय और श्रम कानूनों के पक्षधर

- अंबेडकरजी ने मजदूरों के लिए 8 घंटे कार्य-दिवस, न्यूनतम वेतन, मातृत्व अवकाश, भविष्य निधि जैसे कानूनों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- वे मजदूरों के अधिकारों के प्रबल समर्थक थे।
- उनका मानना था कि राजनीतिक लोकतंत्र तभी सफल होगा जब सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र स्थापित होगा।



4. जाति-विरोध और श्रम का सम्मान

- अंबेडकरजी ने जाति व्यवस्था को श्रम के अपमान की जड़ बताया।
- उन्होंने कहा कि जब तक जाति रहेगी, तब तक श्रमिकों का शोषण और अपमान समाप्त नहीं होगा।
- वे एक ऐसे समाज का निर्माण चाहते थे जहाँ हर व्यक्ति को अपनी योग्यता और श्रम के आधार पर सम्मान मिले।



5. शिक्षा और संगठन को श्रम-मुक्ति का साधन

- अंबेडकरजी ने श्रमिकों और वंचितों से कहा शिक्षित बनो, क्योंकि ज्ञान से आत्मसम्मान आता है।
- संगठित हो, क्योंकि एकता से शक्ति मिलती है।
- संघर्ष करो, क्योंकि अधिकार बिना संघर्ष के नहीं मिलते।

“जीवन लंबा होने के बजाय महान होना चाहिए। और महानता कभी नहीं मिलती बिना श्रम के!”

- डॉ. भीमराव अंबेडकर



6. बुनकरों और कारीगर समुदायों के प्रति संवेदनशीलता

- डॉ. अंबेडकर ने बुनकरों, कारीगरों, खेत मजदूरों और हस्तशिल्पियों के जीवन की कठिनाइयों को समझा।
- वे चाहते थे कि इन समुदायों को शिक्षा, पूँजी, तकनीक और बाजार की सुविधाएँ मिलें।
- उनका मानना था कि भारत की वास्तविक समृद्धि उनके श्रमिकों और कारीगरों से ही आएगी।

अंबेडकर के विचारों का सार



श्रम का सम्मान करो



समानता स्थापित करो



शिक्षा से जागृत हो जाओ।



संगठन से शक्ति बढ़ाओ



संघर्ष से अधिकार पाओ

श्रम ही राष्ट्र की धुरी है, और श्रमिक ही राष्ट्र के निर्माता।
श्रम का सम्मान ही सच्ची मानवता है।

7. आज के संदर्भ में अंबेडकर की प्रासंगिकता

- आज भी जब श्रमिकों का शोषण, असमान वेतन, असुरक्षित कार्य-स्थितियाँ और सामाजिक भेदभाव मौजूद हैं, तब अंबेडकर के विचार मार्गदर्शक हैं।
- ‘श्रम की गरिमा’ को स्वीकार करना ही एक न्यायपूर्ण, समतामूलक और प्रगतिशील समाज की पहचान है।



“यदि आप समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं, तो पहले श्रम को सम्मान देना सीखिए।”

- डॉ. भीमराव अंबेडकर



१६. डॉ. भीमराव आंबेडकर और श्रम की गरिमा

डॉ.

भीमराव आंबेडकर और श्रम की गरिमा सामाजिक न्याय, आर्थिक लोकतंत्र और श्रम आधारित समाज की परिकल्पना भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर का योगदान केवल संविधान निर्माण, सामाजिक न्याय और दलित उत्थान तक सीमित नहीं है। वे आधुनिक भारत के उन महान चिंतकों में से थे जिन्होंने श्रम, उत्पादन, आर्थिक समानता और मानवीय गरिमा को राष्ट्रनिर्माण का मूल आधार माना। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि किसी भी समाज की वास्तविक प्रगति का मूल्यांकन इस आधार पर होना चाहिए कि वह अपने श्रमिकों, किसानों, कारीगरों और उत्पादन करने वाले वर्गों के साथ कैसा व्यवहार करता है।

भारतीय बुनकरों, कारीगरों और श्रमशील समुदायों का इतिहास डॉ. आंबेडकर के विचारों को समझे बिना पूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि उन्होंने उन वर्गों की पीड़ा को समझा था जो सदियों से आर्थिक शोषण और सामाजिक उपेक्षा दोनों का सामना कर रहे थे। भारतीय बुनकरों का संघर्ष केवल अंग्रेजी शासन के विरुद्ध आर्थिक संघर्ष नहीं था, बल्कि सम्मान, समानता और गरिमा के लिए भी संघर्ष था। यही वह बिंदु है जहाँ डॉ. आंबेडकर के विचार भारतीय बुनकर समाज के इतिहास से गहराई से जुड़ते हैं।

श्रमिक वर्ग पर डॉ. आंबेडकर के विचार डॉ. आंबेडकर का मानना था कि श्रम केवल जीविका का साधन नहीं है; श्रम समाज निर्माण की आधारशिला है।

उन्होंने कहा था कि किसी राष्ट्र की समृद्धि केवल उसके शासकों, व्यापारियों या पूँजीपतियों से नहीं बनती, बल्कि उन श्रमिकों से बनती है जो अपने श्रम से उत्पादन करते हैं।

उनकी दृष्टि में,
किसान राष्ट्र का अन्नदाता है ।
मजदूर उत्पादन का आधार है ।
कारीगर संस्कृति का संरक्षक है ।
और बुनकर समाज की आवश्यकताओं का निर्माता है ।

डॉ. आंबेडकर ने श्रमिक वर्ग को राष्ट्र की आर्थिक शक्ति माना । वे मानते थे कि यदि श्रमिक वर्ग को शिक्षा, अवसर और सम्मान प्राप्त हो, तो राष्ट्र की प्रगति सुनिश्चित हो सकती है ।

इसी कारण उन्होंने श्रमिक अधिकारों के लिए अनेक ऐतिहासिक प्रयास किए ।
श्रमिक कल्याण के लिए ऐतिहासिक योगदान

डॉ. आंबेडकर ने वायसराय की कार्यकारी परिषद में श्रम सदस्य (Labour Member) के रूप में कार्य करते हुए श्रमिकों के हित में अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लिए ।

उनके प्रयासों से,
८ घंटे कार्यदिवस की व्यवस्था लागू हुई ।
श्रमिकों के लिए अवकाश संबंधी प्रावधान बने ।
महिला श्रमिकों के लिए संरक्षण संबंधी कानूनों को प्रोत्साहन मिला ।
कर्मचारी भविष्य निधि जैसी अवधारणाओं को बल मिला ।

श्रमिक सुरक्षा और कल्याण के विषयों को राष्ट्रीय नीति का हिस्सा बनाया गया ।

आज भारत में श्रमिकों को प्राप्त अनेक अधिकारों की वैचारिक नींव डॉ. आंबेडकर के प्रयासों में दिखाई देती है ।

आर्थिक लोकतंत्र की अवधारणा

डॉ. आंबेडकर का मानना था कि केवल राजनीतिक लोकतंत्र पर्याप्त नहीं है ।

यदि समाज में आर्थिक असमानता बनी रहे, तो लोकतंत्र अधूरा रहेगा ।

उन्होंने कहा था,

“राजनीतिक लोकतंत्र तब तक टिकाऊ नहीं हो सकता, जब तक उसके आधार में सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र न हो ।”

आर्थिक लोकतंत्र का अर्थ था,

उत्पादन के अवसरों में समानता

संसाधनों तक न्यायपूर्ण पहुँच

श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा

आर्थिक शोषण का अंत

भारतीय बुनकरों के संदर्भ में यह विचार विशेष रूप से महत्वपूर्ण है ।

ब्रिटिश शासन के दौरान बुनकरों का आर्थिक शोषण हुआ ।

उनकी उत्पादन शक्ति कमजोर की गई ।

उन्हें स्वतंत्र व्यापार से वंचित किया गया ।

डॉ. आंबेडकर की आर्थिक लोकतंत्र की अवधारणा ऐसे ही शोषण के विरुद्ध एक वैचारिक उत्तर थी ।

सामाजिक न्याय और बुनकर समाज भारतीय बुनकर समुदाय का एक बड़ा हिस्सा सामाजिक रूप से वंचित और श्रम आधारित समुदायों से संबंधित रहा है ।

उन्होंने केवल आर्थिक कठिनाइयाँ ही नहीं झेलीं, बल्कि अनेक क्षेत्रों में सामाजिक भेदभाव का भी सामना किया ।

डॉ. आंबेडकर ने इस स्थिति को गहराई से समझा ।

उनका मानना था कि कोई भी समाज तब तक प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता, जब तक उसमें श्रम करने वाले लोगों को समान सम्मान प्राप्त न हो ।

उन्होंने सामाजिक न्याय को केवल कानूनी अधिकारों तक सीमित नहीं रखा ।

उनकी दृष्टि में सामाजिक न्याय का अर्थ था—

सम्मानजनक जीवन

समान अवसर

शिक्षा का अधिकार

सामाजिक गरिमा

और भेदभाव से मुक्ति

यह विचार भारतीय बुनकरों और कारीगरों के जीवन से सीधे जुड़ा हुआ था ।

कारीगर वर्ग और सम्मान का प्रश्न

डॉ. आंबेडकर ने बार-बार इस बात पर बल दिया कि उत्पादन करने वाले समुदायों को सम्मान मिलना चाहिए ।

उन्होंने देखा कि भारतीय समाज में अनेक बार श्रम करने वाले लोगों को सामाजिक दृष्टि से निम्न माना जाता है, जबकि समाज की वास्तविक आर्थिक संरचना उन्हीं पर आधारित होती है ।

उन्होंने इस मानसिकता का विरोध किया ।

उनका मानना था कि, “जो समाज श्रम का सम्मान नहीं करता, वह वास्तविक प्रगति नहीं कर सकता।”

भारतीय बुनकर इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

वे वस्त्र बनाते हैं।

वे संस्कृति को जीवित रखते हैं।

वे परंपराओं को संरक्षित करते हैं।

फिर भी उन्हें वह सम्मान हमेशा नहीं मिला जिसके वे अधिकारी थे।

डॉ. आंबेडकर का संघर्ष ऐसे ही श्रमशील समुदायों की गरिमा स्थापित करने का संघर्ष था।

श्रम आधारित समाज की परिकल्पना

डॉ. आंबेडकर एक ऐसे समाज की कल्पना करते थे जहाँ व्यक्ति का मूल्यांकन उसके जन्म से नहीं, बल्कि उसके कर्म, ज्ञान और योगदान से हो।

वे श्रम आधारित समाज के समर्थक थे।

उनकी दृष्टि में, श्रम सम्मान का विषय होना चाहिए।

उत्पादन करने वाले वर्गों को अधिकार मिलने चाहिए।

शिक्षा और कौशल विकास को बढ़ावा मिलना चाहिए।

आर्थिक अवसरों का समान वितरण होना चाहिए।

यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाए, तो भारतीय बुनकर समाज डॉ. आंबेडकर की परिकल्पना का जीवंत उदाहरण है।

बुनकर अपने श्रम, कौशल और सृजनशीलता के आधार पर समाज को योगदान देते हैं ।

वे श्रम आधारित अर्थव्यवस्था के प्रतिनिधि हैं ।

बुनकर, स्वदेशी और सामाजिक परिवर्तन

डॉ. आंबेडकर और महात्मा गांधी के विचारों में अनेक विषयों पर मतभेद थे, लेकिन दोनों इस बात से सहमत थे कि भारत की प्रगति में श्रमशील समाज की महत्वपूर्ण भूमिका है ।

जहाँ गांधीजी ने चरखे और खादी के माध्यम से श्रम को राष्ट्रीय आंदोलन का प्रतीक बनाया, वहीं डॉ. आंबेडकर ने श्रमिकों और वंचित समुदायों के अधिकारों को संवैधानिक और सामाजिक आधार प्रदान किया ।

भारतीय बुनकरों का इतिहास इन दोनों दृष्टिकोणों के संगम को समझने का अवसर देता है ।

एक ओर आत्मनिर्भरता और स्वदेशी का विचार है ।

दूसरी ओर सामाजिक न्याय और समानता का विचार ।

दोनों मिलकर ही एक समतामूलक और आत्मनिर्भर समाज की रचना कर सकते हैं ।

आधुनिक भारत और डॉ. आंबेडकर की प्रासंगिकता

आज जब हम आत्मनिर्भर भारत, कौशल विकास, हस्तशिल्प संरक्षण और ग्रामीण उद्योगों की बात करते हैं, तब डॉ. आंबेडकर के विचार पहले से अधिक प्रासंगिक दिखाई देते हैं ।

यदि बुनकर समाज को सशक्त बनाना है, तो केवल आर्थिक सहायता पर्याप्त नहीं होगी ।

आवश्यक है,
गुणवत्तापूर्ण शिक्षा
आधुनिक तकनीक तक पहुँच
सामाजिक सम्मान
बाजार से सीधा जुड़ाव
और नीति निर्माण में सहभागिता

यही डॉ. आंबेडकर के आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र का वास्तविक स्वरूप है ।

डॉ. भीमराव आंबेडकर ने भारतीय समाज को यह सिखाया कि किसी राष्ट्र की वास्तविक प्रगति उसके श्रमिकों, किसानों, कारीगरों और उत्पादन करने वाले वर्गों के सम्मान में निहित होती है ।

भारतीय बुनकरों का इतिहास इस सत्य का जीवंत प्रमाण है ।

उन्होंने अपने श्रम से राष्ट्र को वस्त्र दिए ।

उन्होंने संस्कृति को संरक्षित किया ।

उन्होंने आर्थिक जीवन को गति दी ।

और अनेक कठिन परिस्थितियों के बावजूद अपनी परंपरा को जीवित रखा ।

डॉ. आंबेडकर का संदेश स्पष्ट था, “श्रम को सम्मान दो, श्रमिक को अधिकार दो और समाज को समानता दो ।”

भारतीय बुनकरों का संघर्ष और डॉ. आंबेडकर का दर्शन मिलकर हमें यह सिखाते हैं कि स्वतंत्रता केवल राजनीतिक अधिकार नहीं है; स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ है, सम्मान, समानता, अवसर और श्रम की गरिमा। जिन हाथों ने करघों पर भारत की संस्कृति बुनी, उन्हीं हाथों को सम्मान दिलाने का संघर्ष डॉ. आंबेडकर के सामाजिक न्याय के दर्शन का भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

जहाँ श्रम का सम्मान है, वहीं लोकतंत्र जीवित है; और जहाँ श्रमिक सम्मानित है, वहीं राष्ट्र वास्तव में महान बनता है।

"श्रम से बुना वस्त्र,
सोने से अधिक मूल्यवान होता है।"

"करघे की हर ध्वनि
स्वदेशी की एक नई घोषणा है।"

"जो धागों को समझता है,
वही भारत की आत्मा को समझ सकता है।"

नाथु सोसा



प्रकरण 17



स्वतंत्र भारत में बुनकर समाज

स्वतंत्रता के बाद भारत ने लोकतांत्रिक शासन, समानता और सामाजिक न्याय पर आधारित नए राष्ट्र के निर्माण का संकल्प लिया।

बुनकर समाज, जिसने सदियों की परंपरा और संघर्ष के बाद भी अपनी कला को जीवित रखा, उस समाज के पुनर्निर्माण और उत्थान के लिए अनेक प्रयास किये गए। यद्यपि चुनौतियाँ आज भी हैं, फिर भी यह समुदाय आया, संघर्ष और

जिस देश ने करघे से सभ्यता, संस्कृति और समृद्धि की रचना की, उस देश का बुनकर आज भी राष्ट्रनिर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।



1. संवैधानिक मान्यता और समान अधिकार

- संविधान ने सभी नागरिकों को समान अधिकार दिए।
- जाती, धर्म, लिंग या पेशे के आधार पर भेदभाव समाप्त करने का संकल्प लिया गया।
- बुनकर समाज को सामाजिक न्याय, आरक्षण, शिक्षा और रोजगार के अवसर उपलब्ध करने की दिशा में नीतियाँ बनाई गईं।

2. खादी और ग्रामोद्योग का पुनरोद्धार

- महात्मा गांधी के सपनों को आगे बढ़ाते हुए खादी और ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) की स्थापना की गई।
- खादी, हस्तकरघा और ग्रामोद्योग उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए योजनाएँ चलाई गईं।
- इससे लाखों बुनकरों को रोजगार के अवसर मिले और देशी उत्पादन को प्रोत्साहन मिला।

3. सहकारी समितियाँ और संगठन

- बुनकरों के हितों की रक्षा और उनके कार्यों के विपणन के लिए सहकारी समितियों की स्थापना की गई।
- राज्य और केंद्र सरकारों ने बुनकर सहकारी समितियों को तकनीकी, वृत्ति और विपणन सहायता प्रदान की।
- अनेक स्थलों पर बुनकर सेवा केंद्र, डिजाइन केंद्र और प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए गए।

4. सरकारी योजनाएँ और कल्याणकारी कार्यक्रम

- प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP)
- राष्ट्रीय हथकरघा विकास कार्यक्रम (NHDP)
- बुनकरों के लिए स्वास्थ्य बीमा, जीवन बीमा, पेंशन योजना और छात्रवृत्ति जैसे योजनाएँ।
- करघा उन्नयन, कार्यशील मूँली सहायता और विपणन सहायता के लिए विशेष प्रावधान।

5. कला, संस्कृति और पहचान का संरक्षण

- भारत के पारम्परिक वस्त्र-बनारसी साड़ी, पटन का पटोला, कांचीपुरम सिल्क, इकट, चंदेरी, मधेश्वरी, पोचमपल्ली, फुलकारी आदि - को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पहचान मिली।
- भौगोलिक संकेत (GI Tag) से अनेक पारम्परिक उत्पादों को सुरक्षा मिली।
- बुनकर समाज की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने का प्रयास निरंतर जारी है।



6. शिक्षा और नई पीढ़ी

- स्वतंत्र भारत में शिक्षा के प्रसार से बुनकर समाज के बच्चों में जागरूकता बढ़ी।
- अधिक से अधिक युवा उच्च शिक्षा प्राप्त कर विविध क्षेत्रों में आगे बढ़ रहे हैं।
- साथ ही नई पीढ़ी अपने पारम्परिक कौशल को आधुनिक डिजाइन और तकनीक के साथ जोड़कर आगे बढ़ा रही है।

7. वर्तमान चुनौतियाँ

- पावरलूम और मशीन निर्मित वस्त्रों से प्रतिस्पर्धा।
- कच्चे माल की बढ़ती कीमतें।
- विपणन और ब्रांडिंग की कमी।
- बिचौलियों का प्रभाव और उचित मूल्य न मिलना।
- डिजाइन और तकनीक के आधुनिकरण की आवश्यकता।

8. नई संभावनाएँ और अवसर

- ई-कॉमर्स और ऐप्लिकेशन के लिए वैश्विक बाजार में रूचि बढ़ी है।
- ई-कॉमर्स और डिजिटल प्लेटफॉर्म से सीधे ग्राहकों तक पहुँच संभव हुई है।
- सरकार और गैर-सरकारी संस्थाओं के सहयोग से डिजाइन नवाचार और कौशल विकास को बढ़ावा मिल रहा है।

9. सामाजिक सम्मान और आत्मविश्वास

- बुनकर समाज आज अपने कौशल, परिश्रम और योगदान के कारण सम्मानित है।
- अनेक बुनकर राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हुए हैं।
- समाज में जागरूकता बढ़ी है। की बुनकर केवल श्रमिक नहीं, बल्कि कलाकार और सृजनकर्ता हैं।

10. भविष्य की दिशा

- कौशल, तकनीक, बाजार और नीति के समन्वय से बुनकर समाज का सर्वांगीण विकास संभव है।
- आवश्यकता है - सतत समर्थन, उचित मूल्य, डिजाइन नवाचार और युवा पीढ़ी को जोड़ने की।
- बुनकर समाज का उत्थान भारत की आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक प्रगति से सीधे जुड़ा हुआ है।



“करघे की हर तान-बान में केवल धागे नहीं, बल्कि परंपरा, परिश्रम, संघर्ष और स्वाभिमान की कहानी बुनी होती है।

स्वतंत्र भारत का संकल्प है - बुनकर समाज का सम्मान, संरक्षण और समृद्धि।”



१७. स्वतंत्र भारत में बुनकर समाज

आजादी के बाद की नीतियाँ, खादी बोर्ड, सहकारी आंदोलन और हथकरघा विकास की यात्रा १५ अगस्त १९४७ को भारत ने राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त की। यह केवल सत्ता परिवर्तन की घटना नहीं थी, बल्कि एक ऐसे राष्ट्र के पुनर्निर्माण की शुरुआत थी जिसने लगभग दो शताब्दियों तक औपनिवेशिक शोषण का सामना किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था अनेक चुनौतियों से घिरी हुई थी। कृषि क्षेत्र कमजोर था, ग्रामीण उद्योग संकटग्रस्त थे और भारतीय बुनकर समुदाय, जिसने सदियों तक देश की आर्थिक एवं सांस्कृतिक पहचान को जीवित रखा था, अभी भी औपनिवेशिक नीतियों के दुष्प्रभावों से उबरने का प्रयास कर रहा था। स्वतंत्र भारत के नीति निर्माताओं के सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न था। क्या भारत केवल बड़े उद्योगों के आधार पर विकास करेगा या फिर गाँवों, कुटीर उद्योगों और हस्तकरघा परंपराओं को भी राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में उचित स्थान दिया जाएगा? इसी प्रश्न के उत्तर में स्वतंत्र भारत ने खादी, ग्रामोद्योग, हस्तकरघा और सहकारी संस्थाओं को प्रोत्साहन देने की दिशा में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए। आजादी के बाद की नीतियाँ और बुनकर समाज स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार ने यह स्वीकार किया कि हस्तकरघा उद्योग केवल आर्थिक गतिविधि नहीं है, बल्कि यह करोड़ों लोगों की आजीविका और भारत की सांस्कृतिक धरोहर से जुड़ा हुआ क्षेत्र है। सरकार ने ग्रामीण रोजगार, स्थानीय उत्पादन और कुटीर उद्योगों के विकास को राष्ट्रीय नीति का हिस्सा बनाया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही हस्तकरघा क्षेत्र को विशेष महत्व दिया गया। नीति निर्माताओं का मानना था कि भारत जैसे विशाल ग्रामीण देश में हस्तकरघा उद्योग रोजगार सृजन का महत्वपूर्ण माध्यम बन सकता है।

स्वतंत्रता के बाद सरकार के प्रमुख उद्देश्य थे,

बुनकरों को रोजगार उपलब्ध कराना।

पारंपरिक कौशल का संरक्षण करना।

स्थानीय उद्योगों को पुनर्जीवित करना।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाना।



खादी और हस्तनिर्मित वस्त्रों को प्रोत्साहन देना ।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनेक संस्थागत व्यवस्थाएँ विकसित की गईं ।

खादी और ग्रामोद्योग आयोग की स्थापना

महात्मा गांधी के स्वदेशी और ग्राम स्वावलंबन के विचारों को आगे बढ़ाने के लिए भारत सरकार ने खादी और ग्रामोद्योग को विशेष महत्व दिया । स ने १९५६ में खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग (Khadi and Village Industries Commission - KVIC) की स्थापना की गई ।

इस संस्था का उद्देश्य था,

खादी उत्पादन को प्रोत्साहित करना ।

ग्रामीण उद्योगों का विकास करना ।

रोजगार सृजन करना ।

कारीगरों को प्रशिक्षण उपलब्ध कराना ।

विपणन व्यवस्था विकसित करना ।

KVIC ने देशभर में खादी संस्थाओं और ग्रामोद्योग संगठनों का व्यापक नेटवर्क विकसित किया ।

इसके माध्यम से लाखों ग्रामीण परिवारों को रोजगार प्राप्त हुआ । खादी केवल स्वतंत्रता आंदोलन की स्मृति नहीं रही; वह ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई । खादी बोर्ड और राज्य स्तरीय संस्थाएँ राष्ट्रीय स्तर पर KVIC के साथ-साथ विभिन्न राज्यों में खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्डों की स्थापना की गई ।

इन बोर्डों का कार्य था,

स्थानीय खादी संस्थाओं को सहयोग देना ।

उत्पादन इकाइयों को बढ़ावा देना ।

प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना ।

विपणन सुविधाएँ उपलब्ध कराना ।

बुनकरों को आर्थिक सहायता प्रदान करना ।

गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और अन्य राज्यों में खादी बोर्डों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । विशेष रूप से गुजरात जैसे राज्यों में खादी आंदोलन केवल सरकारी योजना नहीं था; वह सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का भी हिस्सा था ।

सामूहिक शक्ति का मॉडल स्वतंत्र भारत में बुनकर समाज के विकास का एक महत्वपूर्ण अध्याय सहकारी आंदोलन रहा । कई क्षेत्रों में व्यक्तिगत स्तर पर कार्य करने वाले बुनकर बाजार की प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं कर पा रहे थे । इसलिए सहकारी समितियों की स्थापना की गई ।

इन समितियों के प्रमुख उद्देश्य थे,

सामूहिक खरीद व्यवस्था

सामूहिक उत्पादन

विपणन सहयोग

वित्तीय सहायता

तकनीकी प्रशिक्षण

सहकारी समितियों ने अनेक क्षेत्रों में बुनकरों को नई शक्ति प्रदान की ।

विशेष रूप से गुजरात, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक जैसे राज्यों में सहकारी मॉडल ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की । इस व्यवस्था ने छोटे बुनकरों को संगठित होकर कार्य करने का अवसर दिया । हथकरघा विकास योजनाएँ समय के साथ भारत सरकार ने हथकरघा क्षेत्र के लिए अनेक योजनाएँ प्रारंभ कीं । इन योजनाओं का उद्देश्य केवल उत्पादन बढ़ाना नहीं था, बल्कि बुनकरों के जीवन स्तर को बेहतर बनाना भी था ।

विभिन्न योजनाओं के माध्यम से निम्नलिखित प्रयास किए गए,

आधुनिक कर्घों की उपलब्धता

डिज़ाइन विकास
कौशल प्रशिक्षण
विपणन सहायता
कच्चे माल की उपलब्धता
सामाजिक सुरक्षा
बीमा योजनाएँ
आवास सहायता
शिक्षा संबंधी सहायता

इन योजनाओं ने अनेक बुनकर परिवारों को लाभ पहुँचाया और पारंपरिक उद्योगों को नई ऊर्जा प्रदान की।

२०% रिबेट और खादी का स्वर्णिम काल स्वतंत्र भारत के कई दशकों तक खादी संस्थाओं को विशेष प्रोत्साहन दिया गया। विशेष रूप से खादी वस्त्रों की बिक्री पर प्रदान की जाने वाली रिबेट योजना अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुई। कई कालखंडों में २० प्रतिशत अथवा उससे अधिक रिबेट उपलब्ध कराई जाती थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि,
खादी की बिक्री बढ़ी।
उत्पादन में वृद्धि हुई।
बुनकरों को अधिक रोजगार मिला।
ग्रामीण संस्थाएँ मजबूत हुईं।
खादी भंडारों की गतिविधियाँ बढ़ीं।

देशभर में खादी के प्रति सकारात्मक वातावरण विकसित हुआ।

अनेक वरिष्ठ बुनकर आज भी उस काल को खादी उद्योग का स्वर्णिम युग मानते हैं।

सफलताएँ पुनर्जीवित होती परंपरा स्वतंत्र भारत की नीतियों के परिणामस्वरूप अनेक सकारात्मक परिवर्तन दिखाई दिए ।

१. रोजगार सृजन
लाखों ग्रामीण परिवारों को रोजगार प्राप्त हुआ ।
२. सांस्कृतिक संरक्षण
पारंपरिक बुनाई तकनीकों को संरक्षित किया गया ।
३. महिला सशक्तिकरण
महिलाओं की बड़ी संख्या खादी और ग्रामोद्योग गतिविधियों से जुड़ी ।
४. ग्रामीण विकास
ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अतिरिक्त आय का स्रोत मिला ।
५. राष्ट्रीय पहचान
खादी भारत की सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक बनी रही ।
सीमाएँ और चुनौतियाँ
इन उपलब्धियों के बावजूद अनेक चुनौतियाँ बनी रहीं ।
१. पावरलूम की प्रतिस्पर्धा
मशीन आधारित उत्पादन ने हस्तकरघा क्षेत्र पर दबाव बढ़ाया ।

सस्ते और बड़े पैमाने पर उत्पादित वस्त्रों के कारण हस्तनिर्मित उत्पादों की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति कमजोर हुई ।

२. युवा पीढ़ी का पलायन
नई पीढ़ी शिक्षा और रोजगार के लिए अन्य क्षेत्रों की ओर बढ़ने लगी ।
परिणामस्वरूप पारंपरिक कौशल का हस्तांतरण प्रभावित हुआ ।
३. विपणन की समस्या
अनेक बुनकरों को अपने उत्पादों के लिए उचित बाजार नहीं मिल पाया ।
४. मध्यस्थों का प्रभाव
कई क्षेत्रों में वास्तविक लाभ बुनकरों तक नहीं पहुँच सका ।



५. योजनाओं का सीमित प्रभाव
सरकारी योजनाएँ बनीं, लेकिन उनका लाभ हर बुनकर परिवार तक समान रूप से नहीं पहुँच पाया।

नई सदी और नई संभावनाएँ इक्कीसवीं सदी में परिस्थितियाँ बदल रही हैं। डिजिटल तकनीक, ई-कॉमर्स और वैश्विक बाजारों ने नए अवसर प्रदान किए हैं। आज हस्तनिर्मित उत्पादों की माँग पुनः बढ़ रही है।

लोग मशीन निर्मित वस्त्रों की तुलना में हस्तनिर्मित और पारंपरिक उत्पादों को महत्व देने लगे हैं। यदि उचित प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता और विपणन सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ, तो भारतीय बुनकर समाज पुनः एक महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति बन सकता है।

स्वतंत्र भारत की यात्रा में बुनकर समाज ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं।

औपनिवेशिक शोषण से उबरने का प्रयास किया।

खादी आंदोलन से नई पहचान प्राप्त की।

सहकारी समितियों के माध्यम से संगठित हुआ।

सरकारी योजनाओं से नई ऊर्जा मिली। और आधुनिक चुनौतियों के बीच भी अपनी परंपरा को जीवित रखा।

यह यात्रा अभी पूर्ण नहीं हुई है। आज भी भारत के लाखों बुनकर अपने करघों पर बैठकर केवल वस्त्र नहीं बुन रहे हैं; वे भारत की सांस्कृतिक विरासत, श्रम-सम्मान और आत्मनिर्भरता की परंपरा को भी जीवित रखे हुए हैं। स्वतंत्रता ने भारतीय बुनकरों को नया अवसर दिया, खादी ने उन्हें नई पहचान दी, और उनके श्रम ने यह सिद्ध किया कि राष्ट्र निर्माण केवल संसदों में नहीं, बल्कि करघों पर भी होता है। जब तक भारत के गाँवों में करघे चलते रहेंगे, तब तक आत्मनिर्भर भारत का स्वप्न भी जीवित रहेगा।

"इतिहास की सबसे सुंदर इबारत
बुनकर के करघे पर लिखी गई है।"

नाथु सोसा

प्रकरण 18

जेबरोल के संघर्षरत करघों की मौन पुकार

भारतीय बुनकर समाज की वर्तमान
स्थिति का एक क्षेत्रीय अध्ययन

- पीढ़ियों से चल रहे करघे आज भी परिवार की जीविका का आधार हैं।
- बाजार की मार, मशीनों की प्रतिस्पर्धा, और घटती आय ने बुनकरों की राह कठिन बना दी है।
- फिर भी ये परिवार अपनी परंपरा, कौशल और स्वाभिमान को बचाए हुए हैं।
- यह केवल आर्थिक संघर्ष नहीं, सांस्कृतिक अस्तित्व की लड़ाई है।



करघों की टक-टक में छीपी है
हमारे समाज की आत्मा और अस्मिता।



परिवार का सहयोग
बुनाई की आत्मा



परंपरा हमारी पहचान,
करघा हमारी धरोहर



हस्तकला को संरक्षण
देना समय की माँग



इन संघर्षरत हाथों को आवश्यकता है
सम्मान और सहयोग की

आइए, बुनकर समाज के साथ खड़े हों –
उनकी कला, उनके श्रम और उनके अधिकार के लिए।

१८. जेबरोल के संघर्षरत करघों की मौन पुकार

भारतीय बुनकर समाज की वर्तमान स्थिति का एक क्षेत्रीय अध्ययन

भा

भारतीय बुनकर समाज का इतिहास केवल अतीत की गौरवगाथाओं, औपनिवेशिक शोषण और स्वतंत्रता आंदोलन तक सीमित नहीं है। इतिहास का वास्तविक मूल्य तभी समझा जा सकता है, जब हम उसके वर्तमान स्वरूप को भी देखें। इसी उद्देश्य से भारतीय बुनकर समाज की वर्तमान स्थिति, उनके जीवन-संघर्ष, आर्थिक चुनौतियों और सांस्कृतिक अस्तित्व को समझने के लिए मुझे मध्यप्रदेश के मुरैना जिले की सबलगढ़ तहसील में स्थित जेबरोल गाँव जाने का अवसर प्राप्त हुआ। यह यात्रा मेरे लिए केवल एक क्षेत्रीय अध्ययन नहीं थी; यह भारतीय श्रम-संस्कृति के जीवित स्वरूप से साक्षात्कार करने जैसी थी।

जेबरोल कोई बड़ा नगर नहीं है। यह आधुनिक विकास के चमकदार मानचित्रों पर विशेष रूप से दिखाई भी नहीं देता। फिर भी भारतीय हस्तकरघा परंपरा को समझने की दृष्टि से इसका महत्व अत्यंत विशिष्ट है। यह वह स्थान है जहाँ आज भी करघों की टक-टक केवल सुनाई नहीं देती, बल्कि जीवन की धड़कन के रूप में महसूस की जा सकती है। गाँव में प्रवेश करते ही सबसे पहले जो ध्वनि मेरे कानों तक पहुँची, वह किसी वाहन, बाज़ार या मशीन की नहीं थी। वह करघों की नियमित और लयबद्ध टक-टक थी। यह वही ध्वनि थी जिसने सदियों तक भारत की आर्थिक समृद्धि, सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक जीवन को आकार दिया था। अंतर केवल इतना था कि कभी यह ध्वनि समृद्धि की प्रतीक थी और आज यह अस्तित्व के संघर्ष की साक्षी बन गई है।

जेबरोल पहुँचते ही मेरे मन में एक विशेष अनुभूति जागृत हुई। जिन हाथों ने पीढ़ियों से धागों को वस्त्रों में बदला, जिनकी कला ने भारतीय संस्कृति को रंग, रूप और पहचान प्रदान की, आज वही हाथ अपने अस्तित्व और सम्मानजनक जीवनयापन के लिए संघर्ष करते दिखाई देते हैं। मेरे क्षेत्रीय अध्ययन के दौरान मुझे गाँव के अनेक बुनकर परिवारों से मिलने और उनके जीवन को निकट से समझने

का अवसर मिला। श्री शिवचरण महावर, श्री घूलीलाल महावर, श्री बंटी महावर, श्री राजेश महावर, श्री राकेश महावर, श्रीमती फूलवती महावर, श्रीमती गुड्डा महावर, श्रीमती रीना महावर, श्रीमती सीमा महावर तथा श्री सुकपाल महावर सहित अनेक परिवारों ने अपने अनुभव साझा किए।

इन परिवारों से हुई बातचीत ने मुझे यह समझने में सहायता की कि यहाँ बुनाई केवल एक व्यवसाय नहीं है; यह जीवन की परंपरा है। यह केवल आय का साधन नहीं, बल्कि पीढ़ियों से चली आ रही सांस्कृतिक विरासत का जीवंत स्वरूप है।

परिवार का प्रत्येक सदस्य किसी न किसी रूप में उत्पादन प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। पुरुष करघों पर बैठकर वस्त्र तैयार करते हैं। महिलाएँ सूत तैयार करती हैं, रंगाई का कार्य संभालती हैं, डिजाइन के कार्य में सहयोग करती हैं और उत्पादन की अनेक सूक्ष्म प्रक्रियाओं को पूरा करती हैं। बच्चे भी बचपन से इसी वातावरण में बड़े होते हैं और अनायास ही इस परंपरा का हिस्सा बन जाते हैं।

किन्तु इस सामूहिक श्रम का प्रतिफल अत्यंत सीमित है।

कई बुनकरों ने बताया कि पूरा परिवार दिनभर कठिन परिश्रम करने के बाद भी मुश्किल से दो से तीन सौ रुपये तक की आय अर्जित कर पाता है। लगभग डेढ़ मीटर कपड़ा तैयार करने में छह से सात घंटे तक का समय लग जाता है, किन्तु उसके बदले मिलने वाला पारिश्रमिक अत्यंत कम होता है। अनेक मामलों में प्रति मीटर कपड़े के बदले मिलने वाली राशि श्रम की वास्तविक लागत की तुलना में नगण्य प्रतीत होती है।

यह केवल आर्थिक समस्या नहीं है।

यह उस व्यवस्था का प्रश्न है जिसमें हस्तनिर्मित कला का मूल्य लगातार घटता जा रहा है और बाज़ार उत्पादन की आत्मा को नहीं, केवल उसकी कीमत को महत्व देने लगा है।

जेबरोल के बुनकरों को देखकर बार-बार यह अनुभव हुआ कि वे केवल वस्त्र नहीं बुन रहे हैं; वे अपने पूर्वजों की विरासत को जीवित रख रहे हैं। उनके करघों पर चलने वाला प्रत्येक धागा इतिहास से जुड़ा हुआ है। उनके हाथों की प्रत्येक गति पीढ़ियों से संचित ज्ञान, अनुभव और कौशल का परिणाम है।

एक बुनकर जब करघे पर बैठता है, तब वह केवल उत्पादन नहीं करता; वह अपने अतीत को वर्तमान से और वर्तमान को भविष्य से जोड़ने का कार्य करता है।

जेबरोल के बुनकरों के बीच बिताया गया समय मेरे लिए केवल एक अध्ययन नहीं था; वह भारत के श्रमशील समाज की आत्मा से साक्षात्कार जैसा अनुभव था।

इन परिवारों के पास अपार संपत्ति नहीं है। उनके पास बड़े-बड़े संसाधन नहीं हैं। आधुनिक सुविधाएँ भी सीमित हैं। किन्तु उनके पास एक ऐसी सांस्कृतिक पूँजी है, जिसे किसी आर्थिक आँकड़े में नहीं मापा जा सकता। उनके पास पीढ़ियों से संचित कौशल है। उनके पास श्रम का सम्मान है। उनके पास वह धैर्य है, जिसने विपरीत परिस्थितियों में भी उनकी परंपरा को जीवित रखा है।

एक बुजुर्ग बुनकर से बातचीत के दौरान मैंने उनसे पूछा कि इतने संघर्षों के बाद भी वे इस कार्य को क्यों जारी रखे हुए हैं।

उन्होंने मुस्कराते हुए उत्तर दिया,

“यह केवल काम नहीं है। यह हमारे बाप-दादाओं की निशानी है। करघा बंद हो जाए तो लगता है जैसे घर की साँसें रुक गई हों।”

उनके इन शब्दों में केवल एक व्यक्ति की भावना नहीं थी; उसमें पूरे बुनकर समाज की आत्मा बोल रही थी।

महिलाओं की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अनेक घरों में मैंने देखा कि उत्पादन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण आधार महिलाएँ ही हैं। वे धागों को व्यवस्थित

करती हैं, रंगों का संयोजन करती हैं और अनेक ऐसे कार्य करती हैं, जिनके बिना उत्पादन संभव ही नहीं है। वास्तव में हस्तकरघा उद्योग की शक्ति केवल करघों में नहीं, बल्कि उन श्रमशील महिलाओं के हाथों में भी निहित है, जो बिना किसी विशेष पहचान के इस परंपरा को जीवित रखे हुए हैं।

जेबरोल के युवाओं के साथ संवाद करते हुए एक नई वास्तविकता सामने आई। नई पीढ़ी शिक्षित हो रही है। वह मोबाइल, इंटरनेट और आधुनिक जीवन से परिचित है। उनके सामने रोजगार के अनेक नए अवसर उपलब्ध हैं। ऐसे में पारंपरिक बुनाई उनके लिए हमेशा आकर्षक नहीं रह जाती।

यह स्थिति चिंता का विषय अवश्य है।

यदि आने वाली पीढ़ियाँ इस परंपरा से दूर हो जाएँगी, तो सदियों से संचित यह कौशल, यह लोकज्ञान और यह सांस्कृतिक विरासत किसके पास सुरक्षित रहेगी?

यह प्रश्न केवल जेबरोल का नहीं है। यह भारत के लगभग सभी हस्तकरघा क्षेत्रों का साझा प्रश्न है।

आज वैश्विक बाज़ार में प्रतिस्पर्धा बढ़ चुकी है। मशीनें कम समय में अधिक उत्पादन कर रही हैं। बड़े उद्योग कम लागत पर वस्त्र उपलब्ध करा रहे हैं। उपभोक्ता अक्सर सस्ते उत्पादों की ओर आकर्षित हो जाता है। ऐसे समय में हस्तकरघा उद्योग का अस्तित्व केवल उत्पादन के आधार पर सुरक्षित नहीं रखा जा सकता।

इसके लिए समाज को यह समझना होगा कि हस्तनिर्मित वस्त्र केवल एक उत्पाद नहीं हैं; वे भारत की सांस्कृतिक धरोहर हैं।

जब हम किसी हस्तनिर्मित वस्त्र को खरीदते हैं, तब हम केवल कपड़ा नहीं खरीदते; हम किसी परिवार के श्रम का सम्मान करते हैं। हम किसी परंपरा को जीवित रखने में योगदान देते हैं। हम उस सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में भागीदार बनते हैं, जिसने सदियों से भारत की पहचान बनाई है।

जेबरोल की यात्रा ने मुझे यह भी सिखाया कि आशा अभी समाप्त नहीं हुई है।

कुछ युवा नई तकनीकों का उपयोग कर रहे हैं। कुछ सोशल मीडिया के माध्यम से अपने उत्पादों का प्रचार कर रहे हैं। कुछ डिजिटल मंचों और ई-कॉमर्स के माध्यम से नए बाजार खोजने का प्रयास कर रहे हैं। यह संकेत है कि यदि उचित मार्गदर्शन, प्रशिक्षण और बाजार उपलब्ध हो, तो हस्तकरघा उद्योग आज भी नई ऊर्जा प्राप्त कर सकता है।

सरकार, समाज, शिक्षण संस्थानों और उपभोक्ताओं सभी की इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि हस्तकरघा उद्योग को केवल रोजगार का साधन मानकर देखा जाएगा, तो उसका महत्व सीमित रह जाएगा। किन्तु यदि उसे भारत की सांस्कृतिक धरोहर और आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के आधार के रूप में देखा जाएगा, तो उसका भविष्य अधिक सुरक्षित हो सकेगा।

जब मैं जेबरोल से लौट रहा था, तब संध्या धीरे-धीरे गाँव पर उतर रही थी। करघों की ध्वनि अब भी वातावरण में गूँज रही थी। कुछ बुजुर्ग अपने कार्य में लगे थे, कुछ महिलाएँ धागों को व्यवस्थित कर रही थीं और कुछ बच्चे उन्हीं करघों के आसपास खेल रहे थे, जिन पर उनके पूर्वजों ने जीवन भर श्रम किया था।

उस क्षण मुझे अनुभव हुआ कि इतिहास वास्तव में कभी समाप्त नहीं होता। वह पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहता है। कभी वह स्वतंत्रता संग्राम के रूप में सामने आता है, कभी खादी आंदोलन के रूप में, कभी स्वदेशी चेतना के रूप में और कभी किसी छोटे से गाँव में संघर्षरत बुनकर परिवारों के जीवन में।

जेबरोल ने मुझे यह सिखाया कि भारतीय बुनकरों का संघर्ष अतीत की स्मृति मात्र नहीं है; वह आज भी जारी है। अंतर केवल इतना है कि कभी संघर्ष औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध था और आज संघर्ष बाजार, मशीनों तथा बदलते समय के बीच अपनी पहचान को सुरक्षित रखने का है।

फिर भी जब तक किसी गाँव में करघों की टक-टक सुनाई देती रहेगी, तब तक यह विश्वास भी जीवित रहेगा कि भारत की श्रम-संस्कृति, उसकी लोकपरंपरा और उसका स्वाभिमान जीवित है।

“जेबरोल के करघों की टक-टक केवल धागों की ध्वनि नहीं है; यह उन श्रमशील हाथों की पुकार है, जिन्होंने विपन्नता में भी अपनी कला, अपनी परंपरा और अपने स्वाभिमान को जीवित रखा है।”

“यदि करघों की यह टक-टक थम गई, तो केवल एक कला नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक स्मृति का एक महत्वपूर्ण अध्याय भी मौन हो जाएगा।” और इसलिए जेबरोल की कहानी केवल जेबरोल की कहानी नहीं है।

यह भारत के उन लाखों ज्ञात-अज्ञात बुनकरों की कहानी है, जिन्होंने अपने श्रम से संस्कृति को जीवित रखा, अपनी कला से सभ्यता को समृद्ध किया और विपरीत परिस्थितियों में भी अपने स्वाभिमान को टूटने नहीं दिया।

“भारत की पहचान केवल स्मारकों में नहीं,
हस्तकरघा के वस्त्रों में भी जीवित है।”

“करघे पर बैठा हर कारीगर
राष्ट्रनिर्माण का मौन शिल्पी है।”

“वस्त्र शरीर की रक्षा करते हैं,
पर संस्कृति राष्ट्र की रक्षा करती है।”

नाथु सोसा

बदलते समय में बुनकर समाज

प्रकरण 19

परंपरा, तकनीक और भविष्य के बीच संघर्ष

समय के साथ दुनिया बदल रही है, मगर बुनकर समाज आज भी अपने अस्तित्व, सम्मान और पहचान के लिए संघर्ष कर रहा है।

एक ओर जहाँ मशीनों और पावरलूम ने उत्पादन को आसान और सस्ता बना दिया, वहीं दूसरी ओर परंपरागत करघों की टक-टक आज भी संस्कृति, कौशल और मानव श्रम की अमूल्य धरोहर को जीवित रखे हुए है।

"करघा हमारी पहचान है, तकनीक हमारा साधन है और भविष्य हमारी आशा है।"

1. बदलते समय की चुनौतियाँ

- पावरलूम और मशीनों से हस्तकरघा की प्रतिस्पर्धा बढ़ी।
- सस्ते और तेजी से बनने वाले कृत्रिम कपड़ों ने बाजार पर कब्जा किया।
- कच्चे माल की कीमतों में लगातार वृद्धि।
- पारंपरिक बुनाई को उचित मूल्य नहीं मिल पाता।

2. तकनीक का प्रभाव

- आधुनिक तकनीक ने उत्पादन की गति बढ़ाई, लेकिन पारंपरिक कौशल को पीछे छोड़ दिया।
- पावरलूम ने बड़े पैमाने पर उत्पादन आसान किया, परंतु हस्तकरघा की विशिष्टता कम हुई।
- नई पीढ़ी तकनीक से जुड़ रही है, लेकिन परंपरा से दूर होती जा रही है।

3. परंपरा की ताकत

- सदियों पुरानी बुनाई कला हमारी सांस्कृतिक धरोहर है।
- हर डिजाइन, हर रंग के पीछे हमारी लोककथाएँ, संस्कृति और पहचान छुड़ी है।
- हस्तकला केवल कपड़ा नहीं बनाता, यह हमारी भावनाओं और परंपराओं को बुनता है।

4. बुनकर परिवारों की स्थिति

- बुनाई पर निर्भर परिवार आर्थिक रूप से असुरक्षित।
- आय अनिश्चित होने के कारण बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य प्रभावित।
- सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की जानकारी और पहुंच का अभाव।
- अनेक परिवार आज भी मूलभूत सुविधाओं से वंचित।

5. महिला बुनकरों की भूमिका

- बुनाई प्रक्रिया में महिलाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण।
- सूत तैयार करना, रंगाई, कलाई, डिजाइन तैयार करना, सहयोगी कार्य।
- फिर भी उन्हें उचित पहचान और सम्मान अवसर नहीं मिलता।



6. बाजार की बदलती माँग

- उपभोगताओं की पसंद में तेज बदलाव।
- पारंपरिक उत्पादों की माँग घटी, आधुनिक डिजाइन और विविधता की माँग बढ़ी।
- ब्रांडेड और पावरलूम उत्पादों का प्रभाव।
- ग्रामीण बुनकरों को बाजार तक पहुंच में कठिनाई।

7. नई पीढ़ी की सोच

- युवा पीढ़ी स्वायत्त आय और सम्मानजनक रोजगार की तलाश में।
- कठिन परिश्रम के बावजूद कम आय के कारण बुनाई छोड़ रहे हैं।
- शिक्षा और जागरूकता के साथ परंपरा को जोड़ना आवश्यक।

8. सरकारी योजनाएँ और सहयोग

- अनेक सरकारी योजनाएँ बुनकरों के लिए हैं, लेकिन जमीन स्तर पर लाभ सीमित।
- डिजाइन विकास, प्रशिक्षण, ऋण सुविधा, मशीनरी उपनयन पर अधिक ध्यान आवश्यक।
- योजनाओं की जानकारी, सरल प्रक्रिया और पारदर्शिता जरूरी।

9. संभावनाएँ और समाधान

- पारंपरिक कला + आधुनिक डिजाइन = वैश्विक बाजार में पहचान।
- ई-कॉमर्स, डिजिटल प्लेटफॉर्म से बुनकरों को नई संभावनाएँ।
- कौशल विकास, डिजाइन प्रशिक्षण, सहकारी समितियों और सामूहिक प्रयास भविष्य का मार्ग है।

10. भविष्य की दिशा

- परंपरा का संरक्षण और तकनीक का समावेश।
- बुनकरों के श्रम का सम्मान और उचित मूल्य सुनिश्चित करना।
- बच्चों की शिक्षा और बुनाई को साथ लेकर चलना।
- बुनकर समाज के समग्र विकास से ही भारत की सांस्कृतिक पहचान सशक्त होगी।



आज आवश्यकता है - परंपरा को बचाने की, तकनीक को अपनाने की और बुनकर समाज को सम्मान और सहयोग देने की।



परिवार का सहयोग बुनकर की शक्ति



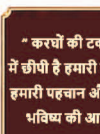
शिक्षा और जागरूकता भविष्य की कुंजी



सरकार, समाज और बाजार का सहयोग जरूरी



स्वायत्त वैश्विक बाजार तक हमारी पहुंच हो



"करघों की टक-टक में छिपी है हमारी संस्कृति, हमारी पहचान और हमारे भविष्य की आशा।"



बुनकर समाज का उत्थान, भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और आत्मनिर्भरता की पहचान है।

१९. बदलते समय में बुनकर समाज परंपरा, तकनीक और भविष्य के बीच संघर्ष

भा

रतीय बुनकरों का इतिहास केवल अतीत की गौरवगाथा नहीं है; वह वर्तमान के संघर्ष और भविष्य की संभावनाओं की भी कहानी है। सदियों तक भारतीय बुनकरों ने अपने श्रम, कौशल और सृजनशीलता से देश की आर्थिक और सांस्कृतिक पहचान को समृद्ध बनाया। उन्होंने औपनिवेशिक शोषण का सामना किया, स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान दिया और स्वतंत्र भारत के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। किन्तु इक्कीसवीं सदी के बदलते आर्थिक, तकनीकी और सामाजिक परिवेश ने उनके सामने नई चुनौतियाँ प्रस्तुत कर दी हैं। आज का बुनकर उस स्थिति में खड़ा है जहाँ एक ओर उसके पास पीढ़ियों से प्राप्त अमूल्य कौशल और परंपरा है, तो दूसरी ओर वैश्विक प्रतिस्पर्धा, मशीन आधारित उत्पादन और तेजी से बदलते उपभोक्ता बाजार की चुनौतियाँ भी हैं। यह परिवर्तनशील युग में भारतीय बुनकर समाज की स्थिति, संघर्ष और संभावनाओं का विश्लेषण करता है।

पावरलूम बनाम हैंडलूम गति और गरिमा के बीच का संघर्ष भारतीय वस्त्र उद्योग के वर्तमान परिदृश्य को समझने के लिए पावरलूम और हैंडलूम के बीच के अंतर को समझना आवश्यक है। हैंडलूम अर्थात् हस्तकरघा केवल उत्पादन की तकनीक नहीं है। यह मानवीय कौशल, कलात्मकता और धैर्य का प्रतीक है। एक बुनकर करघे पर बैठकर अपने अनुभव और कला के आधार पर वस्त्र तैयार करता है। प्रत्येक उत्पाद में उसकी व्यक्तिगत पहचान दिखाई देती है। इसके विपरीत पावरलूम मशीन आधारित उत्पादन प्रणाली है। इसमें कम समय में अधिक मात्रा में वस्त्र तैयार किए जा सकते हैं। उत्पादन लागत कम होती है और बाजार की मांग को शीघ्रता से पूरा किया जा सकता है। इसी कारण आज बाजार में पावरलूम उत्पादों का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा है। लेकिन इस प्रतिस्पर्धा ने हस्तकरघा उद्योग के सामने गंभीर संकट भी उत्पन्न किया है। जहाँ एक हस्तकरघा बुनकर एक दिन में सीमित उत्पादन कर सकता है, वहीं मशीनें हजारों मीटर कपड़ा तैयार कर सकती हैं। परिणामस्वरूप हस्तनिर्मित उत्पादों की कीमत अधिक प्रतीत होती है और सामान्य

उपभोक्ता अक्सर सस्ते विकल्पों की ओर आकर्षित हो जाता है। फिर भी यह समझना आवश्यक है कि पावरलूम और हैंडलूम प्रतिस्पर्धी नहीं, बल्कि अलग-अलग प्रकृति के उद्योग हैं। मशीन उत्पादन मात्रा दे सकता है, लेकिन हस्तकरघा आत्मा, परंपरा और सांस्कृतिक मूल्य प्रदान करता है।

युवा पीढ़ी और बदलती आकांक्षाएँ भारतीय बुनकर समाज की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है नई पीढ़ी का परंपरागत व्यवसायों से दूर होना। आज का युवा शिक्षा प्राप्त कर रहा है। वह नए अवसरों की तलाश में शहरों और महानगरों की ओर बढ़ रहा है। वह स्थिर आय, आधुनिक जीवनशैली और नए व्यवसायों की ओर आकर्षित हो रहा है। यह स्वाभाविक भी है। कोई भी युवा अपने जीवन को बेहतर बनाना चाहता है। लेकिन इसके साथ एक महत्वपूर्ण प्रश्न भी जुड़ा हुआ है, यदि युवा पीढ़ी करघों से दूर हो जाएगी, तो सदियों पुरानी यह विरासत आगे कौन बढ़ाएगा? मेरी राजस्थान और गुजरात यात्राओं के दौरान अनेक बुनकर परिवारों ने यही चिंता व्यक्त की। बुजुर्ग बुनकर चाहते हैं कि उनके बच्चे शिक्षा प्राप्त करें, लेकिन वे यह भी चाहते हैं कि उनकी कला और परंपरा समाप्त न हो। कुछ युवाओं ने स्पष्ट कहा कि केवल परंपरा के आधार पर जीवन चलाना कठिन है। यदि बुनाई को सम्मानजनक आय, आधुनिक बाजार और तकनीकी सहयोग मिले, तो वे इस क्षेत्र में बने रहना चाहते हैं। यही आज की वास्तविक चुनौती है।

डिजिटल युग और नई संभावनाएँ जहाँ एक ओर आधुनिक समय चुनौतियाँ लेकर आया है, वहीं उसने नई संभावनाओं के द्वार भी खोले हैं। डिजिटल तकनीक ने दुनिया को एक वैश्विक बाजार में बदल दिया है।

आज कोई भी कारीगर अपने गाँव से ही अपने उत्पादों को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय ग्राहकों तक पहुँचा सकता है। सोशल मीडिया, वेबसाइट, डिजिटल कैटलॉग, ऑनलाइन भुगतान प्रणाली और डिजिटल मार्केटिंग ने हस्तशिल्प और हस्तकरघा उद्योग के लिए नए अवसर पैदा किए हैं। पहले जहाँ एक बुनकर स्थानीय

हाट या बाजार तक सीमित था, आज वह अपने उत्पादों को पूरे देश और दुनिया तक पहुँचा सकता है। यह परिवर्तन विशेष रूप से युवा पीढ़ी के लिए अवसर लेकर आया है। जो युवा तकनीक समझते हैं, वे अपनी परंपरा को आधुनिक बाजार से जोड़ सकते हैं।

ई-कॉमर्स और बुनकर समाज ई-कॉमर्स ने हस्तकरघा क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन की संभावनाएँ पैदा की हैं। आज ग्राहक सीधे उत्पादक से जुड़ सकता है।

इससे बिचौलियों की भूमिका कम हो सकती है।

बुनकरों को उनके उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त हो सकता है।

भारत में अनेक डिजिटल मंच हस्तनिर्मित उत्पादों को बढ़ावा दे रहे हैं। इसके अतिरिक्त कई स्वयंसेवी संस्थाएँ, सामाजिक उद्यम और निजी कंपनियाँ भी बुनकरों को ऑनलाइन बाजार से जोड़ने का प्रयास कर रही हैं। मेरे अपने अनुभव में भी यह स्पष्ट हुआ है कि यदि पारंपरिक बुनाई को डिजिटल मंचों से जोड़ा जाए, तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था में नया परिवर्तन लाया जा सकता है। यही कारण है कि वर्तमान समय में ई-कॉमर्स केवल व्यापार का माध्यम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संरक्षण का साधन भी बन सकता है।

बाजार की चुनौतियाँ नई संभावनाओं के बावजूद अनेक चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं।

१. सस्ते मशीन निर्मित उत्पाद

बाजार में बड़ी मात्रा में उपलब्ध सस्ते उत्पाद हस्तकरघा उद्योग के लिए बड़ी चुनौती हैं।

२. कच्चे माल की बढ़ती लागत

सूत, रंग, ऊन और अन्य कच्चे माल की कीमतों में वृद्धि ने उत्पादन लागत बढ़ा दी है।

३. डिज़ाइन और नवाचार की आवश्यकता
आधुनिक ग्राहक पारंपरिक उत्पादों के साथ-साथ नवीन डिज़ाइन भी चाहता है ।
४. विपणन का अभाव
अनेक बुनकर उत्कृष्ट उत्पाद बनाते हैं, लेकिन बाज़ार तक पहुँच नहीं बना पाते ।
५. वित्तीय संसाधनों की कमी
छोटे बुनकरों के पास आधुनिक उपकरणों, प्रशिक्षण और विपणन में निवेश करने की सीमित क्षमता होती है ।
६. नकली हस्तकरघा उत्पाद
बाज़ार में कई मशीन निर्मित उत्पादों को “हैंडलूम” के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे वास्तविक बुनकरों को नुकसान होता है । भविष्य की दिशा, भारतीय बुनकर समाज का भविष्य निराशाजनक नहीं है । वास्तव में आज विश्वभर में हस्तनिर्मित, पर्यावरण-अनुकूल और सांस्कृतिक पहचान वाले उत्पादों की मांग बढ़ रही है । यदि उचित नीति, तकनीकी सहयोग और बाज़ार उपलब्ध कराया जाए, तो भारतीय बुनकर पुनः वैश्विक पहचान प्राप्त कर सकते हैं ।

इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम आवश्यक हैं ।

युवाओं को कौशल और उद्यमिता प्रशिक्षण
डिजिटल मार्केटिंग का प्रसार
ई-कॉमर्स से सीधा जुड़ाव
डिज़ाइन नवाचार
सहकारी मॉडल को मजबूत करना

बुनकरों को ब्रांड निर्माण में सहायता

हस्तकरघा उत्पादों का अंतरराष्ट्रीय प्रचार

अनुभूति, राजस्थान, गुजरात और विभिन्न बुनकर समुदायों के बीच बिताए गए समय ने मुझे यह अनुभव कराया कि भारतीय बुनकर केवल एक व्यवसायिक वर्ग नहीं हैं ।

वे हमारी सांस्कृतिक स्मृति के संरक्षक हैं ।

वे श्रम-सम्मान के प्रतीक हैं ।

वे आत्मनिर्भर भारत की जीवित अभिव्यक्ति हैं ।

जब मैं किसी करघे के सामने बैठता हूँ, तो मुझे केवल धागे नहीं दिखाई देते ।

मुझे पीढ़ियों का संघर्ष दिखाई देता है ।

मुझे परंपरा दिखाई देती है ।

मुझे संस्कृति दिखाई देती है ।

और मुझे भविष्य की संभावनाएँ भी दिखाई देती हैं ।

आज भारतीय बुनकर समाज एक महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़ा है ।

एक ओर परंपरा है ।

दूसरी ओर तकनीक है ।

एक ओर इतिहास है ।

दूसरी ओर भविष्य है ।

चुनौती यह नहीं है कि कौन जीतेगा ।

चुनौती यह है कि दोनों का समन्वय कैसे होगा ।



यदि हम परंपरा को तकनीक से जोड़ सकें, यदि हम करघों को डिजिटल दुनिया से जोड़ सकें, यदि हम बुनकरों को सम्मानजनक आय और वैश्विक बाजार से जोड़ सकें, तो भारतीय हस्तकरघा उद्योग का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल हो सकता है ।

मशीनें वस्त्र बना सकती हैं,
लेकिन परंपरा नहीं बना सकती ।
तकनीक बाजार दे सकती है,
लेकिन संस्कृति नहीं दे सकती ।

इसलिए जहाँ करघा जीवित है, वहाँ भारत की आत्मा भी जीवित है । बदलते समय में भी यदि बुनकर जीवित है, तो यह केवल एक समुदाय की नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक चेतना की विजय है ।

"बुनाई केवल व्यवसाय नहीं,
यह भारत की सभ्यता की निरंतर यात्रा है ।"

"धागे टूट जाएँ तो फिर जुड़ सकते हैं,
पर स्वाभिमान कभी टूटना नहीं चाहिए ।"

"जिस घर में करघा चलता है,
वहाँ श्रम ही सबसे बड़ा उत्सव होता है ।"

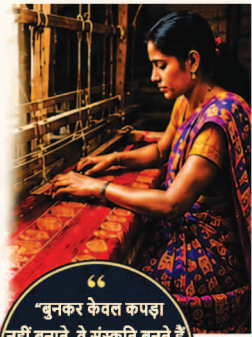
नाथु सोसा



प्रकरण 20

बुनकर भारत की संस्कृति के सूत्रधार

श्रम, स्वाभिमान और सभ्यता की अमर गाथा



“बुनकर केवल कपड़ा नहीं बनाते, वे संस्कृति बुनते हैं, सभ्यता सहेजते हैं और समाज को जोड़ते हैं।”



करघे की टक-टक केवल धागों को नहीं बुनती, यह इतिहास, संस्कृति, आस्था, सौंदर्य और मानवता को जोड़ती है। भारतीय बुनकर समाज ने सदियों से अपने श्रम, कौशल और रचनात्मकता से भारत को वस्त्र ही नहीं, पहचान भी दी है।



1. संस्कृति के रचनाकार

भारतीय वस्त्र परंपराएँ हमारी संस्कृति, त्योहार, रीति-रिवाज और लोकजीवन की अभिव्यक्ति हैं। हर प्रदेश, हर समुदाय की अपनी विशिष्ट बुनाई कला हमारी विविधता में एकता का प्रतीक है।



2. सभ्यता के संवाहक

सिंधु घाटी से लेकर आधुनिक युग तक बुनकरों ने समाज की आवश्यकताओं को पूरा किया। वस्त्रों के माध्यम से उन्होंने सभ्यताओं को जोड़ा, व्यापार को आगे बढ़ाया और समाज की आर्थिक रीढ़ को मजबूत किया।



3. श्रम और स्वाभिमान के प्रतीक

बुनकर समाज ने कभी भीख नहीं मांगी, उन्होंने श्रम किया, सृजन किया और समाज को दिया। उनके श्रम में स्वाभिमान, ईमानदारी और आत्मसम्मान की अद्विभूत मिसाल है।



4. स्वतंत्रता चेतना के वाहक

खादी, स्वदेशी और आत्मनिर्भरता के आंदोलन में बुनकरों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके करघे, उनके धागों और उनकी सोच ने भारत की स्वतंत्रता चेतना को मजबूत किया।



5. भविष्य के निर्माता

परंपरागत कौशल, प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग, टिकाऊ जीवन शैली और रचनात्मकता – ये सब मिलकर बुनकर समाज को भविष्य की सतत और मानवीय सभ्यता का मार्गदर्शक बनाते हैं।



बुनकर समाज का योगदान

- अर्थव्यवस्था को आधार
- मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति
- कला, सौंदर्य और रचनात्मकता का विकास
- सामाजिक समरसता और सहयोग
- लोकसंस्कृति, परंपराओं और मूल्यों का संरक्षण
- राष्ट्रीय एकता और आत्मनिर्भरता में योगदान

हमारा दायित्व

बुनकर समाज का सम्मान करें, उनके कौशल को पहचानें, उनकी समस्याओं को समझें और उनके उत्थान के लिए समाज, सरकार और बाजार – तीनों स्तर पर सहयोग करें।

“जब तक करघे चलेगे, तब तक संस्कृति जीवित रहेगी। जब तक बुनकर सृजन करेंगे, तब तक भारत महान रहेगा।”



श्रम हमारा अभिमान है



कौशल हमारी पहचान है



परंपरा हमारी विरासत है



संघर्ष हमारी गाथा है



भविष्य हमारा संकल्प है

बुनकर समाज भारत की आत्मा है, उसकी मेहनत से सभ्यता सजी है, उसके धागों से संस्कृति बुनी है, और उसके सपनों से भविष्य रंगा है। आइए, बुनकर समाज के साथ खड़े हों – सम्मान दें, सहयोग दें, अवसर दें।

२०. बुनकर भारत की संस्कृति के सूत्रधार श्रम, स्वाभिमान और सभ्यता की अमर गाथा

बुनकर भारत की संस्कृति के सूत्रधार श्रम, स्वाभिमान और सभ्यता की अमर गाथा किसी भी राष्ट्र की पहचान केवल उसके राजमहलों, किलों, युद्धों और शासकों से नहीं होती। उसकी वास्तविक पहचान उन साधारण लोगों से निर्मित होती है, जिनके श्रम, कौशल और सृजन ने उसकी सभ्यता को आकार दिया होता है। भारत का इतिहास भी ऐसा ही इतिहास है। यहाँ जितना योगदान राजाओं और वीरों का रहा है, उतना ही योगदान उन श्रमशील समुदायों का भी रहा है, जिन्होंने चुपचाप अपने परिश्रम से इस देश की सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक संरचना को मजबूत बनाया।

भारतीय बुनकर समाज ऐसा ही एक समुदाय है।

यह केवल एक व्यवसाय नहीं, बल्कि भारत की सभ्यता की निरंतरता का प्रतीक है।

जब हम भारत की सांस्कृतिक विरासत की बात करते हैं, तब हमारे सामने मंदिर, स्मारक, साहित्य, संगीत और लोककलाएँ आती हैं; किन्तु वस्त्र संस्कृति भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। वस्त्र केवल शरीर को ढँकने का साधन नहीं होते, वे समाज की पहचान, उसकी जीवनशैली, उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति और उसके सांस्कृतिक चरित्र के प्रतीक होते हैं। और इन प्रतीकों को आकार देने का कार्य सदियों से भारतीय बुनकरों ने किया है।

भारत की विविधता उसके वस्त्रों में भी दिखाई देती है।

बनारस की रेशमी बुनावट,

पाटण का पटोला,

कच्छ की बंधनी,
राजस्थान की लहरिया,
महेश्वर की साड़ी,
चंदेरी की कोमलता,
कश्मीर की पश्मीना,
असम की मेखला-चादर,
ओडिशा की संबलपुरी कला,
दक्षिण भारत की कांचीपुरम परंपरा,

ये सभी केवल वस्त्र नहीं हैं; ये भारत की सांस्कृतिक आत्मकथा के जीवंत अध्याय हैं ।

इन सबके पीछे अनगिनत बुनकर परिवारों की पीढ़ियों का ज्ञान, अनुभव और श्रम जुड़ा हुआ है ।

भारतीय बुनकरों ने केवल धागों को नहीं जोड़ा; उन्होंने समाज को जोड़ा ।
उन्होंने केवल रंगों को नहीं सजाया; उन्होंने संस्कृति को स्वरूप दिया ।
उन्होंने केवल वस्त्र नहीं बनाए; उन्होंने भारत की पहचान को बुना ।

इसी कारण भारतीय बुनकरों का इतिहास किसी एक जाति, समुदाय या क्षेत्र का इतिहास नहीं है; वह सम्पूर्ण भारत की सांस्कृतिक यात्रा का इतिहास है ।

सदियों तक भारतीय वस्त्रों ने विश्व को आकर्षित किया ।

भारत के सूती, रेशमी और हस्तनिर्मित वस्त्र यूरोप, अरब, फारस, अफ्रीका और दक्षिण-पूर्व एशिया तक पहुँचते थे ।

ढाका की मलमल को “वायु-वस्त्र” कहा जाता था ।

गुजरात के वस्त्र समुद्री व्यापार के माध्यम से विश्व बाजारों तक पहुँचते थे ।

राजस्थान की रंगकारी और दक्षिण भारत की बुनाई कला विदेशी यात्रियों को चमत्कृत करती थी ।

भारतीय बुनकरों की कला ने भारत को केवल आर्थिक समृद्धि ही नहीं दी, बल्कि वैश्विक प्रतिष्ठा भी प्रदान की ।

किन्तु इतिहास के प्रवाह में एक ऐसा दौर भी आया जब इस गौरवशाली परंपरा को गहरा आघात पहुँचा ।

औपनिवेशिक शासन ने भारत की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था को कमजोर करने के लिए सबसे पहले उसके हस्तकरघा उद्योग को निशाना बनाया ।

भारतीय बुनकरों की आर्थिक स्वतंत्रता सीमित की गई ।

स्थानीय उद्योगों को कमजोर किया गया ।

विदेशी मशीन निर्मित वस्त्रों को बढ़ावा दिया गया ।

कई बुनकर परिवार निर्धनता और संकट का सामना करने लगे ।

परन्तु इन परिस्थितियों के बीच भी भारतीय बुनकरों ने अपनी कला को समाप्त नहीं होने दिया ।

यही उनकी सबसे बड़ी विजय थी ।

वे परिस्थितियों से पराजित नहीं हुए ।

उन्होंने अपने करघों को जीवित रखा ।

उन्होंने अपनी परंपरा को जीवित रखा ।



उन्होंने अपने स्वाभिमान को जीवित रखा ।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में भी बुनकरों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही ।

स्वदेशी आंदोलन ने भारतीय बुनकरों को नई ऊर्जा दी ।

खादी केवल वस्त्र नहीं रही; वह राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक बन गई ।

चरखा केवल उपकरण नहीं रहा; वह आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता का प्रतीक बन गया ।

जब महात्मा गांधी ने खादी को अपनाने का आह्वान किया, तब लाखों बुनकरों ने राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय योगदान दिया ।

उनके श्रम ने स्वतंत्रता आंदोलन को जन-आंदोलन बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

मेरे लिए इस पुस्तक का लेखन केवल ऐतिहासिक अध्ययन नहीं था ।

यह एक आत्मीय यात्रा भी थी ।

राजस्थान, गुजरात और भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बुनकर परिवारों के बीच बिताए गए क्षणों ने मुझे यह अनुभव कराया कि भारत की वास्तविक शक्ति उसके श्रमशील समाज में निहित है ।

आलूदा, बिलावास, जेबरोल, मांडवा, पनियाली, जूना सांगाणा और अनेक गाँवों की यात्राओं ने मुझे यह सिखाया कि इतिहास केवल अभिलेखागारों में नहीं मिलता; वह लोगों के जीवन में मिलता है ।

वह करघों की टक-टक में मिलता है ।

वह वृद्ध कारीगरों की आँखों में मिलता है ।

वह उन महिलाओं के हाथों में मिलता है, जो धागों को जीवन देती हैं ।

वह उन युवाओं में मिलता है, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन बनाने का प्रयास कर रहे हैं ।

आज जब विश्व तीव्र गति से बदल रहा है, तब भारतीय बुनकर समाज एक नए मोड़ पर खड़ा है ।

नई तकनीकें अवसर भी लेकर आई हैं और चुनौतियाँ भी ।

यदि उचित नीति, बाज़ार, प्रशिक्षण और तकनीकी सहयोग उपलब्ध कराया जाए, तो भारतीय हस्तकरघा उद्योग पुनः विश्व स्तर पर अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित कर सकता है ।

यह केवल आर्थिक आवश्यकता नहीं है; यह सांस्कृतिक उत्तरदायित्व भी है । क्योंकि जब कोई करघा बंद होता है, तब केवल एक व्यवसाय समाप्त नहीं होता; उसके साथ एक परंपरा, एक स्मृति और एक सांस्कृतिक धरोहर भी संकट में पड़ जाती है । और जब कोई करघा चलता है, तब केवल वस्त्र नहीं बनते; इतिहास आगे बढ़ता है ।

इसलिए भारतीय बुनकरों को केवल उत्पादक के रूप में नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षक के रूप में देखा जाना चाहिए ।

वे वास्तव में इस राष्ट्र के “सूत्रधार” हैं ।

उन्होंने सभ्यता को आकार दिया ।

उन्होंने संस्कृति को संरक्षित रखा ।

उन्होंने श्रम को सम्मान दिया ।

उन्होंने स्वाभिमान को जीवित रखा । और उन्होंने भारत को उसकी पहचान प्रदान की ।

“भारत के बुनकरों ने केवल वस्त्र नहीं बुने; उन्होंने संस्कृति को संरक्षित किया, सभ्यता को आगे बढ़ाया और श्रम की गरिमा को पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवित रखा ।”

“जब तक करघों की टक-टक गूँजती रहेगी, तब तक भारत की सांस्कृतिक चेतना, उसका स्वाभिमान और उसकी आत्मा भी जीवित रहेगी ।”

जय भीम । जय भारत ।

नाथु सोसा सूरत

"भारत का प्रत्येक हस्तकरघा
एक जीवित सांस्कृतिक धरोहर है ।"

"बुनकर का सम्मान,
भारत की परंपरा का सम्मान है ।"

"करघे का पहिया घूमता है,
तो समय भी इतिहास लिखने लगता है ।"

नाथु सोसा

"विदेशी शासन वस्त्र छीन सकता था, पर भारतीय बुनकर की आत्मा नहीं ।"

* * *

"धागों ने भारत को केवल ढका नहीं, उन्होंने भारत को जोड़े रखा ।"

* * *

"भारत के करघों ने संसार को वस्त्र दिए, और भारत को अमर पहचान ।"

* * *

"बुनकर का श्रम दिखाई नहीं देता,
पर उसका सृजन पूरी सभ्यता को दिखाई देता है ।"

* * *

"धागों में रंग भरना आसान है, उनमें इतिहास बुनना कठिन है ।"

* * *

"जिस भूमि पर करघे चलते हैं, वहाँ संस्कृति कभी निर्धन नहीं होती ।"

* * *

"स्वाभिमान की सबसे मजबूत डोरी श्रम से ही बुनी जाती है ।"

* * *

"भारत के बुनकरों ने समय को भी धागों में बाँध दिया ।"

* * *

"हर हथकरघा आत्मनिर्भर भारत का मौन घोषणापत्र है ।"

* * *

"करघे की लय में भारत की आत्मा का संगीत सुनाई देता है ।"

* * *

"जो अपने बुनकरों का सम्मान करता है, वही अपने इतिहास का सम्मान करता है ।"

* * *

"हाथों की मेहनत से बुना वस्त्र मशीनों से बने वस्त्रों से अधिक जीवंत होता है ।"

* * *

"हर करघा एक विद्यालय है, जहाँ श्रम, धैर्य और सृजन साथ-साथ जन्म लेते हैं ।"

* * *



"बुनकर का पसीना भारत की सांस्कृतिक पूँजी है ।"

* * *

"धागे जोड़ने वाला समाज, कभी टूटता नहीं ।"

* * *

"स्वदेशी का इतिहास करघे की आवाज़ से शुरू होता है ।"

* * *

"बुनाई केवल जीविका नहीं, यह राष्ट्रभक्ति की एक शांत अभिव्यक्ति है ।"

* * *

"भारत का प्रत्येक हस्तनिर्मित वस्त्र एक मौन सांस्कृतिक दस्तावेज़ है ।"

* * *

"धागों की मजबूती विश्वास से आती है,
और राष्ट्र की मजबूती अपने श्रमिकों के सम्मान से ।"

* * *

"इतिहास तलवारों ने भी लिखा, पर सभ्यता करघों ने बचाई ।"

* * *

"बुनकर का घर छोटा हो सकता है,
पर उसका योगदान पूरे राष्ट्र जितना विशाल होता है ।"

* * *

"जब तक भारत में करघे जीवित हैं,
तब तक भारत की संस्कृति अमर है ।"

* * *

"जिस दिन भारत ने करघा खोया,
उसी दिन उसने अपनी अर्थव्यवस्था का एक आधार खो दिया ।"

* * *

"बुनकर का संघर्ष केवल आजीविका का नहीं था,
वह भारत की अस्मिता बचाने का संघर्ष था ।"

* * *



"विदेशी शासन ने करघों पर आघात किया,
पर भारतीय आत्मा को पराजित नहीं कर सका ।"

* * *

"हर हथकरघा स्वतंत्रता की मौन घोषणा था ।"

* * *

"भारत का बुनकर श्रम का साधक और संस्कृति का संरक्षक है ।"

* * *

"जब करघे थमे, तब लाखों घरों की साँसें भी थम गईं ।"

* * *

"इतिहास के पन्नों में राजाओं का उल्लेख मिलता है,
पर राष्ट्र की आत्मा बुनकरों के हाथों में मिलती है ।"

* * *

"भारत की सबसे बड़ी संपत्ति उसके श्रमिक हाथ हैं ।"

* * *

"जो राष्ट्र अपने कारीगरों का सम्मान नहीं करता,
वह अपनी सभ्यता को भी खो देता है ।"

* * *

"स्वदेशी केवल वस्त्र नहीं,
आत्मसम्मान का परिधान है ।"

* * *

"हर बुना हुआ धागा गुलामी के विरुद्ध एक मौन प्रतिरोध था ।"

* * *

"बुनकर का करघा भारत की आर्थिक स्वतंत्रता का प्रथम विद्यालय था ।"

* * *

"करघे की ध्वनि में भारत की आत्मनिर्भरता की पुकार सुनाई देती है ।"

* * *



"वस्त्र केवल शरीर नहीं ढँकते,
वे एक राष्ट्र की संस्कृति भी संभालते हैं।"

* * *

"भारतीय बुनकरों ने इतिहास के सबसे कठिन समय में भी आशा नहीं छोड़ी।"

* * *

"हर करघा एक दीपक है,
जो परंपरा की लौ को पीढ़ी-दर-पीढ़ी जलाए रखता है।"

* * *

"राष्ट्र की शक्ति उसके शस्त्रों से नहीं,
उसके श्रमिकों के सम्मान से मापी जाती है।"

* * *

"भारतीय बुनकरों ने धागों से केवल वस्त्र नहीं,
भारत की आत्मा को भी जोड़े रखा।"

* * *

"जब तक करघे की टक-टक गूँजती रहेगी,
तब तक भारत का स्वाभिमान अमर रहेगा।"

* * *

"भारत का इतिहास केवल राजमहलों में नहीं,
बुनकरों की झोपड़ियों में भी लिखा गया है।"

* * *

"जिस धागे में श्रम जुड़ जाता है,
वही धागा विरासत बन जाता है।"

* * *

"बुनकर के हाथों की लकीरों में,
भारत का भविष्य बुना होता है।"

नाथु सोसा



धागों में बुना स्वाभिमान

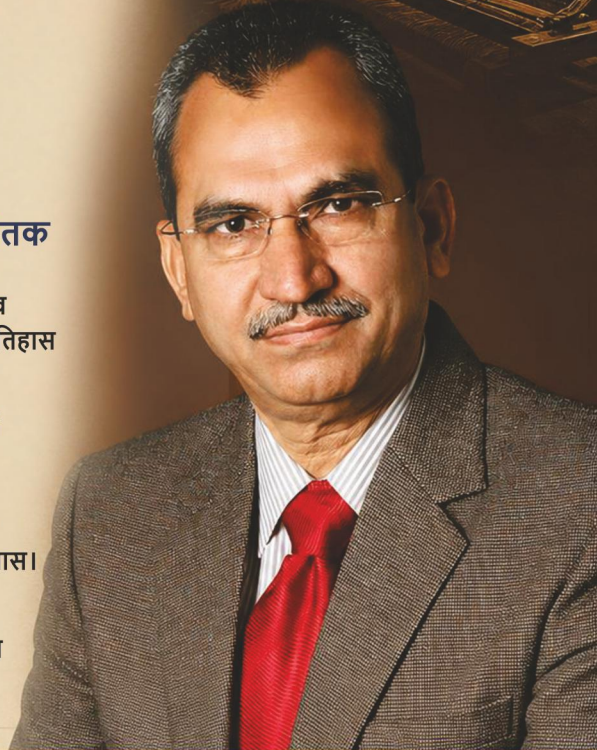
ब्रिटिश शासन के खिलाफ
भारतीय बुनकरों का संघर्ष

लेखक परिचय

नाथु सोसा

लेखक | शोधकर्ता | सामाजिकचिंतक

- सामाजिक इतिहास, श्रम संस्कृति, डॉ. भीमराव आंबेडकर के विचारों तथा वंचित समाजों के इतिहास के गहन अध्ययता।
- भारत के विभिन्न राज्यों, गाँवों और समुदायों में रहकर व्यापक अध्ययन एवं शोध।
- बुनकर समाज, श्रम, संस्कृति और इतिहास के उपेक्षित अध्यायों को सामने लाने का सतत प्रयास।
- लेखनी का उद्देश्य इतिहास के माध्यम से स्वाभिमान, न्याय और सामाजिक परिवर्तन का संदेश देना।



“भारत के करघों ने केवल वस्त्र नहीं बुने; उन्होंने संस्कृति, स्वाभिमान, संघर्ष और राष्ट्रचेतना को भी धागों में पिरोया है।”

“जब तक करघों की टक-टक जीवित है, तब तक भारत की श्रम परंपरा और सांस्कृतिक चेतना भी जीवित रहेगी।”



जय भीम | जय भारत
जय संविधान

ISBN 939199107-6



9 789391 991074

₹250/-